Success Pana Chahte Hai . Com

ब्रिटिश शासन का भारतीय अर्थव्यवस्था एवं समाज पर प्रभाव
Impact of British Rule of Indian Economy & Society

ब्रिटिश आर्थिक नीति के अन्तर्गत मुख्यत: ब्रिटिश भू-राजस्व व्यवस्था, कृषि का व्यवसायीकरण, वि-औद्योगीकरण, रेलवे का विकास तथा धन का निष्कासन आदि का अध्ययन किया जाता है।

भू-राजस्व व्यवस्था

भारत में ब्रिटिश भू-राजस्व नीति का प्रमुख उद्देश्य अधिकाधिक धन प्राप्त करना था, ताकि इस धन से एक मजबूत सैनिक एवं प्रशासनिक संगठन स्थापित कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विस्तार एवं उसका सुदृढ़ीकरण किया जा सके। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी स्वतंत्र व्यापार में विश्वास करते थे, इसलिए उन्होंने आयात तथा निर्यात कर से अधिक धन प्राप्त करने की बजाय भू-राजस्व के माध्यम से ही अधिकाधिक धन प्राप्त करने का प्रयास किया।

बक्सर के युद्ध के पश्चात् 1765 ई. में हुई इलाहाबाद की संधि से अंग्रेजों को बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा में भू-राजस्व प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो गया। यहां क्लाइव के द्वारा द्वैध शासन पद्धति लागू की गई। इस पद्धति के अन्तर्गत बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा से भू-राजस्व वसूल करने का अधिकार क्रमश: मुहम्मद रजा खां, राजा सिताब राय एवं राय दुर्लभ को दिया गया। किन्तु इनके द्वारा अधिकाधिक भू-राजस्व की वसूली करने के क्रम में कृषकों के शोषण को प्रोत्साहन मिला।

1772 ई. में वॉरेन हेस्टिंग्ज ने द्वैध शासन पद्धति समाप्त कर पंचशाला बंदोबस्त लागू किया, जिसमें कर संग्रहण का अधिकार ऊँची बोली वाले को 5 वर्ष के लिए नीलाम कर दिया। नीलामी में जमींदारों को हतोत्साहित किया गया तथा बड़े-बड़े ठेकेदारों को प्राथमिकता दी गई। अधिकतर ठेकेदार सट्टेबाज थे, उन्हें न तो भूमि की जानकारी थी और न ही उनने कृषकों के हित के लिए कुछ सोचा। इन ठेकेदारों ने कृषकों से अधिकतम कर प्राप्त करने का प्रयास किया, जिससे परेशान होकर कई कृषकों ने खेती करना ही छोड़ दिया। चूंकि नीलामी ऊँची कीमतों पर की गई थी, अत: ठेकेदारों को भी अधिक लाभ प्राप्त नहीं हो पाता था, जिससे ठेकेदारों ने अगली नीलामी में भाग लेने में कम रूचि दिखाई। 1776 ई. में पंचशाला बंदोबस्त की समाप्ति कर एक वर्षीय प्रणाली अपनाई गई, किन्तु यह प्रणाली भी असफल रही। हालात ऐसे हो गए थे कि 1789 ई. में लॉर्ड कॉर्नवालिस को कहना पड़ा था कि 'कंपनी के अधीन साम्राज्य का तीसरा भाग केवल उजाड़ रहता था तथा वहां जंगली पशु ही बसते थे।' इन परिस्थितियों में कंपनी के अधिकारियों ने भू-राजस्व व्यवस्था पर गंभीरतापूर्वक विचार करना प्रारंभ किया, जिससे कुछ परिणाम सामने आए। अंग्रेजों ने भारत में मुख्यत: 3 प्रकार की भू-राजस्व व्यवस्था अपनाई - स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था, रैयतवाड़ी व्यवस्था एवं महालवाड़ी व्यवस्था।

❒ स्थायी जमींदारी बंदोबस्त (The Parmanent Zamindari Settlement)

यह व्यवस्था लॉर्ड कॉर्नवालिस द्वारा मुख्यत: बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश के बनारस डिवीजन तथा उत्तरी कर्नाटक में लागू की गई थी। इसके अन्तर्गत ब्रिटिश भारत का लगभग 19 प्रतिशत भू-भाग शामिल था। इस क्षेत्रों में लागू की गई व्यवस्था के अन्तर्गत चूंकि जमींदारों के साथ स्थायी रूप से अनुबंध किया गया था, अत: इस व्यवस्था को स्थायी जमींदारी बंदोबस्त कहा जाता है।

◆ कारण एवं उद्देश्य

स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था को अपनाने के पीछे निम्नलिखित कारण एवं उद्देश्य थे -

1) स्थायी एवं अधिकतम भू-राजस्व राशि प्राप्त करना, ताकि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रसार हेतु निश्चित योजना बनाई जा सके।

2) प्रशासनिक झंझटों से बचना, ताकि अधिकारियों का प्रयोग मुख्यत: ब्रिटिश साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण हेतु किया जा सके।

3) ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा हेतु जमींदारों के रूप में मित्रों का एक वर्ग तैयार करना, ताकि उसका प्रयोग द्वितीय सुरक्षा पंक्ति के रूप में किया जा सके।

4) कृषि योग्य भूमि एवं उत्पादकता में वृद्धि की जा सके। वस्तुत: कृषि क्षेत्र में सुधार हेतु महत्वपूर्ण भूमिका अंग्रेज या जमींदार या कृषकों के द्वारा निभाई जा सकती थी। चूंकि अभी कंपनी के अधिकारी कृषि क्षेत्र में निवेश नहीं करना चाहते थे और न ही कृषकों की आर्थिक स्थिति इस योग्य थी कि वे इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें। यही कारण है कि इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु जमींदारों के साथ बंदोबस्त किया गया।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

5) स्थायी बंदोबस्त में जमींदार वर्ग को प्राथमिकता देने के पीछे एक उद्देश्य गांवों में एक समृद्धशाली वर्ग का निर्माण करना था, ताकि ब्रिटिश वस्तुओं को ग्रामीण क्षेत्रों में भी बाजार प्राप्त हो सके तथा नगरीय क्षेत्रों से मुद्रा का प्रवाह ग्रामीण क्षेत्रों की ओर भी हो सके।

- **विशेषताएं**

1) यह अनुबंध स्थायी रूप से जमींदारों के द्वारा किया गया, अर्थात् – उत्पादन में चाहे वृद्धि हो या कमी कंपनी को एक निश्चित राशि ही प्राप्त होनी थी।

2) इस व्यवस्था में जमींदारों को भूमि का मालिक माना गया तथा उन्हें जमीन की खरीद-बिक्री का भी अधिकार दिया गया।

3) भूमि पर जमींदारों का अधिकार तब तक होता था, जब तक वे निश्चित तिथि को नियत राशि सरकार को देते रहते थे। किन्तु 1794 के सूर्यास्त कानून के अनुसार अगर निश्चित तिथि की शाम तक जमींदार भू-राजस्व चुकता नहीं करता था, तो संबंधित जमींदार की जमींदारी नीलाम कर दी जाती थी।

4) भू-राजस्व में से 1/11 हिस्से पर जमींदार का, जबकि 10/11 हिस्से पर सरकार का अधिकार होता था।

- **प्रभाव**

❖ **सकारात्मक**

इस व्यवस्था से निम्नलिखित लाभ भी प्राप्त हुए –

1) ब्रिटिश सरकार को स्थायी रूप से एक बड़ी राशि प्राप्त होने लगी, जिसकी सहायता से अंग्रेजों ने एक मजबूत सेना का निर्माण कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया तथा ब्रिटिश प्रशासनिक एवं न्यायिक अधिकारियों को बेहतर वेतन-भत्ते दिए जा सके।

2) इस व्यवस्था में ब्रिटिश अधिकारियों की कम भागीदारी थी, जिससे उनका उपयोग अन्य क्षेत्रों में ब्रिटिश साम्राज्य को मजबूती प्रदान करने हेतु किया जा सका।

3) ब्रिटिश सरकार को जमींदारों के रूप में द्वितीय सुरक्षा पंक्ति प्राप्त हो सकी। उदाहरणार्थ – 1857 ई. के विद्रोह में बहुत से जमींदारों ने विद्रोहियों का साथ नहीं दिया, बल्कि विद्रोह को कुचलने में अंग्रेजों की सहायता की। उसी प्रकार पावना विद्रोह के दौरान भी कृषकों की नाराजगी ब्रिटिश सरकार के प्रति नहीं, बल्कि जमींदारों के विरुद्ध थी। इस मौके पर कृषकों ने कहा था कि 'हम जमींदारों की नहीं, बल्कि विक्टोरिया की रैयत हैं।'

4) भारतीय जमींदारों को भी इस व्यवस्था से लाभ हुआ तथा उनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति मजबूत हुई। इस धन का उपयोग बहुत से जमींदारों ने शैक्षणिक, कलात्मक, औद्योगिक एवं व्यवसायिक विकास के लिए भी किया।

5) कृषि के क्षेत्र में वाणिज्यीकरण (नकदी फसल) को प्रोत्साहन मिला, जिससे भारत की स्वाबलंबी अर्थव्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से जुड़ गई।

❖ **नकारात्मक**

इस व्यवस्था से लाभ के मुकाबले हानियां अधिक हुईं, जिन्हें निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत् देखा जा सकता है –

1) इस व्यवस्था से यद्यपि अंग्रेजों को एक बड़ी एवं स्थायी राशि अवश्य प्राप्त होने लगी, किन्तु कृषि योग्य भूमि एवं उत्पादन में वृद्धि होने के साथ-साथ सरकार की आय में वृद्धि नहीं हुई।

2) ग्रामीण क्षेत्रों में परम्परागत् जमींदारों को भी इस व्यवस्था का अधिक लाभ प्राप्त नहीं हुआ, क्योंकि भू-राजस्व की राशि भूमि की उत्पादकता को अधिक मानते हुए बहुत अधिक निश्चित की गई थी। इससे ये जमींदार निश्चित तिथि पर राजस्व जमा नहीं कर पाते थे, परिणामस्वरूप उनकी जमींदारी नीलाम कर दी जाती थी।

3) सूर्यास्त कानून के अन्तर्गत् जमींदारी की नीलामी किए जाने से भी अनेक समस्याओं ने जन्म लिया। प्रथम, ब्रिटिश सरकार की प्रशासनिक झंझटे कम होने की बजाय बढ़ गई। द्वितीय, इस व्यवस्था से दूरस्थ जमींदारी का निर्माण हुआ। ऐसे जमींदारों के द्वारा कृषकों का अधिकाधिक शोषण किया गया, जिससे कृषक उपद्रव व विद्रोह प्रारंभ हो गए, परिणामस्वरूप ब्रिटिश शासन का आधार और भी कमजोर हो गया। तृतीय, ग्रामीण क्षेत्रों में कृषकों के विद्रोह होने पर ये दूरस्थ जमींदार ब्रिटिश सरकार के लिए कुछ खास मदद नहीं कर सके। चतुर्थ, दूरस्थ जमींदारी के कारण न तो ग्रामीण क्षेत्रों में समृद्धशाली वर्ग का

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

निर्माण हुआ और न ही शहरी क्षेत्रों से मुद्रा प्रवाह ग्रामीण क्षेत्रों की ओर हो सका। इसके विपरीत ग्रामीण मुद्रा का प्रवाह शहरों की ओर होने लगा, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी, भूखमरी जैसी आर्थिक समस्याओं ने जन्म लिया।

4) स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था से सर्वाधिक नुकसान कृषकों को हुआ, जिसे निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत् देखा जा सकता है-

a) कृषकों से भूमि का स्वामित्व छीनकर जमींदारों को दे दिया गया था।

b) भू-राजस्व की राशि बहुत अधिक निश्चित की गई थी।

c) सूर्यास्त कानून के अन्तर्गत् ग्रामीण जमींदारों से भूमि छीनकर शहरी जमींदारों को नीलाम कर दी गई थी। चूंकि शहरी जमींदारों को कृषकों से कुछ लेना देना नहीं था, अत: उनके द्वारा कृषकों पर अनेक जुल्म किए गए तथा जबरन एवं अधिकतम भू-राजस्व वसूल किया गया।

d) इस व्यवस्था में जमींदारों को भूमि के क्रय-विक्रय का अधिकार दिया गया था। इससे भी अनेक समस्याएं उत्पन्न हुई। प्रथम, भूमि के विखण्डीकरण को प्रोत्साहन मिला, जिससे न्यायिक विवाद बढ़े, उत्पादन में कमी आई, भूमि का मूल्य बढ़ गया तथा चूंकि धनवान वर्ग ही भूमि खरीद सकता था, निर्धन नहीं, अत: इससे धनवान अधिक धनी तथा निर्धन अधिक गरीब होते गए।

e) इस व्यवस्था में भू-राजस्व प्राय: नकद में ही वसूल किया जाता था, जिससे कृषक नकदी कृषि करने हेतु विवश हुए। वस्तुत: खाद्यान्न फसलों की कीमत कम होती थी, जबकि नकदी फसलों की अधिक। अत: कृषक नकदी फसलों की खेती कर ही भू-राजस्व चुका सकते थे। किन्तु वाणिज्यिक (नकदी) कृषि से कृषकों को अनेक प्रकार की हानियां हुई। प्रथम, खाद्यान्न की मात्रा कम हो गई, जिससे भूखमरी की स्थिति निर्मित हो गई। द्वितीय, वाणिज्यिक खेती को प्रारंभ करने में कृषकों को महाजनों या साहूकारों से ऋण लेना होता था, जिससे ऋणग्रस्तता में वृद्धि हुई।

❐ रैय्यतवाड़ी व्यवस्था (Ryotwari System)

1799 ई. में टीपू तथा 1818 ई. में मराठों को पराजित करने के उपरांत अंग्रेजों का अधिकार मद्रास एवं बाम्बे में भी हो गया था। इन नवविजित क्षेत्रों से भी आर्थिक लाभ प्राप्त करने हेतु यहां पर भी भू-राजस्व व्यवस्था निश्चित करनी थी। रैय्यतवाड़ी व्यवस्था मुख्यत: मद्रास एवं बाम्बे प्रेसीडेन्सी में लागू की गई थी। इसके अंतर्गत ब्रिटिश भारत का 51 प्रतिशत भाग शामिल था। यह व्यवस्था सर्वप्रथम 1792 ई. में कर्नल रीड के द्वारा बारामहल क्षेत्र में लागू की गई थी, आगे इस व्यवस्था को 1820 ई. में मुनरो के साथ मद्रास प्रेसीडेन्सी में तथा 1825 ई. में एल्फिस्टन के द्वारा बाम्बे प्रेसीडेन्सी में लागू किया गया। इन क्षेत्रों में अपनाई गई व्यवस्था के अन्तर्गत् चूंकि अनुबंध कृषकों के साथ किया गया था, अत: उसे रैय्यतवाड़ी व्यवस्था कहा गया।

• कारण एवं उद्देश्य

रैय्यतवाड़ी व्यवस्था को अपनाने के पीछे निम्नलिखित कारण एवं उद्देश्य थे -

1) स्थायी बंदोबस्त में अंग्रेजों को कृषि उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ भू-राजस्व में अतिरिक्त लाभ प्राप्त नहीं हो रहा था। अत: अंग्रेजों ने मद्रास एवं बॉम्बे में अस्थायी अनुबंध किया।

2) दक्षिण एवं पश्चिम भारत में उत्तर भारत के जमींदारों की तरह कोई स्पष्ट वर्ग नहीं था, अत: अंग्रेजो ने सीधे कृषकों के साथ अनुबंध किया।

3) मुनरों तथा एल्फिस्टन जैसे अधिकारियों पर उपयोगितावादी विचारधारा का प्रभाव था। इनका मानना था कि जमींदार वर्ग अनुत्पादक वर्ग होता है अत: भू-राजस्व अनुबंध सीधे कृषकों के साथ किया जाना चाहिए।

4) स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था के अंतर्गत जमींदारों के द्वारा कृषकों का अत्यधिक शोषण किया गया था। साथ ही दूरस्थ जमींदारी के कारण कृषि के विकास हेतु भी नगण्य प्रयास किए गए थे। अत: इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए नवीन भू-राजस्व व्यवस्था को अपनाया गया।

• विशेषताएं

1) इस व्यवस्था में भूमि का स्वामित्व कृषकों को दिया गया। कृषक भूमि का क्रय-विक्रय कर सकते थे, किन्तु लगान की अदायगी न होने पर भूमि जब्त की जा सकती थी।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

2) रैय्यतवाड़ी व्यवस्था में भू-राजस्व का प्रबंधन अस्थायी रूप से 10 से 40 वर्षो के लिए किया गया था। समय-समय पर इसका पुनर्निरीक्षण भी किया जाना था।

3) इस व्यवस्था में भू-राजस्व की राशि उत्पादन का 50 से 60 प्रतिशत निर्धारित की गई थी।

- **प्रभाव**
  - **सकारात्मक**

1) इस व्यवस्था में सरकार एवं रैय्यतों के मध्य प्रत्यक्ष संबंध स्थापित किया गया ।

2) रैय्यतवाड़ी व्यवस्था में भूमि का स्वामित्व कृषकों को माना गया था तथा उन्हें भूमि के विक्रय का अधिकार भी दिया गया था।

3) रैय्यतवाड़ी व्यवस्था में भूमि के सर्वेक्षण के उपरांत उत्पादक शक्ति के आधार पर भू-राजस्व का निर्धारण किया गया था। साथ ही कृषकों को यह छूट दी गई थी कि वे जिस भूमि को जोतना चाहे उसी प्रकार की भूमि को गृहण करें।

  - **नकारात्मक**

1) प्रारंभ में तो भूमि की उत्पादक शक्ति के आधार पर भू-राजस्व का निर्धारण किया गया था, किन्तु आगे अनुमान के आधार पर कृषकों पर बहुत अधिक भू-राजस्व निश्चित किया गया था ।

2) इस व्यवस्था ने भूमि का स्वामित्व नाममात्र के लिए कृषकों को दिया था। वास्तव में भू-राजस्व की राशि बहुत अधिक होती थी, जिससे कृषक भू-राजस्व की राशि नहीं चुका पाते थे। परिणामस्वरूप उन्हें अपनी भूमि गंवानी पड़ती थी।

3) इस पद्धति में भूमि को विक्रय योग्य बना दिया गया था, जिससे भूमि के विखण्डीकरण को प्रोत्साहन मिला। इससे अनेक समस्याएं उत्पन्न हुई। प्रथम, न्यायिक विवाद बढ़े, उत्पादन में कमी आई, भूमि का मूल्य बढ़ गया तथा चूंकि धनवान वर्ग ही भूमि खरीद सकता था, निर्धन नहीं, अत: इससे धनवान अधिक धनी तथा निर्धन अधिक गरीब होते गए।

4) इस व्यवस्था में भू-राजस्व प्राय: नकद में ही वसूल किया जाता था, जिससे कृषक नकदी कृषि करने हेतु विवश हुए। वस्तुत: खाद्यान्न फसलों की कीमत कम होती थी, जबकि नकदी फसलों की अधिक। अत: कृषक नकदी फसलों खेती कर ही भू-राजस्व चुका सकते थे, किन्तु वाणिज्यिक (नकदी) कृषि से कृषकों को अनेक प्रकार की हानियां हुईं। प्रथम, खाद्यान्न की मात्रा कम हो गई, जिससे भूखमरी की स्थिति निर्मित हो गई। द्वितीय, वाणिज्यिक खेती को प्रारंभ करने में कृषकों को महाजनों या साहूकारों से ऋण लेना होता था, जिससे ऋणग्रस्तता में वृद्धि हुई।

5) इस व्यवस्था में कृषकों के साथ अनुबंध स्थायी रूप से नहीं किया गया था। साथ ही कृषकों की आर्थिक स्थिति भी मजबूत नहीं थीं। फलत: कृषकों ने कृषि विकास हेतु कोई महत्वपूर्ण प्रयास नहीं किए।

❐ महालवाड़ी व्यवस्था

इस पद्धति का जन्मदाता हॉल्ट मैकेन्जी को माना जाता है। आगे 1833 ई. में मार्टिन बर्ड तथा जेम्स टाम्सन ने भी इस बंदोबस्त को अपनाया। यह व्यवस्था उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा पंजाब प्रांत में लागू की गई थी। इसके अंतर्गत ब्रिटिश साम्राज्य का कुल 30 प्रतिशत भू-भाग शामिल था।

महाल शब्द से तात्पर्य जागीर अथवा गांव है। महालवाड़ी व्यवस्था के अंतर्गत् भूमि कर की इकाई कृषक का खेत नहीं, बल्कि ग्राम या महाल को माना गया, इसलिए इस व्यवस्था को महालवाड़ी व्यवस्था कहा जाता है।

- **कारण एवं उद्देश्य**

अन्य भू-राजस्व व्यवस्थाओं के अनुरूप महालवाड़ी व्यवस्था का भी प्रमुख उद्देश्य अधिकाधिक धन की प्राप्ति थी। साथ ही इस व्यवस्था को अपनाने का एक कारण यह भी था कि जिन क्षेत्रों मे यह व्यवस्था लागू की गई थी, उन क्षेत्रों में प्राचीनकाल से ही भू-राजस्व की अदायगी हेतु सम्मिलित उत्तरादायित्व की प्रणाली प्रचलित थी।

- **विशेषताएं**

1) महालवाड़ी व्यवस्था में गांव की समस्त भूमि ग्रामसभा की मानी गई थी। ग्रामसभा में से एक किसान लम्बरदार होता था, जो पूरे गांव से राजस्व की वसूली कर सरकार को देता था।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

2) सरकार इसी लंबरदार को जमीन का मालिक मानती थी।

3) लंबरदार लगान न चुका पाने पर कृषक से जमीन छीनने का अधिकार रखता था।

4) छोटे किसान यदि राजस्व नहीं चुका पाते थे, तो मजबूरन बड़े किसानों को ही राजस्व चुकाना पड़ता था।

5) इस व्यवस्था में भू-राजस्व की राशि अस्थायी रूप से प्राय: 30 वर्ष के लिए निर्धारित की गई थी। भू-राजस्व की वसूली नकद के रूप में की जाती थी, जो कि उत्पादन का लगभग 66 प्रतिशत होती थी।

- **प्रभाव**

इस व्यवस्था के अन्तर्गत् भी कृषकों के शोषण को प्रोत्साहन मिला। भूमि की उत्पादकता को अत्यधिक मानते हुए भू-राजस्व की राशि बहुत अधिक निश्चित की जाती थी, अत: कृषक उचित समय पर लगान अदा नहीं कर पाते थे। इससे छोटे कृषकों से जमीन लेकर बड़े कृषकों को दे दी जाती थी। इस व्यवस्था में चूंकि सम्पन्न कृषक ही भू-राजस्व दे पाते थे, अत: लंबरदार छोटे किसानों से भूमि छीनकर बड़े कृषकों को दे देता था। इस प्रकार ये बड़े कृषक एक प्रकार के जमींदार के रूप में छोटे कृषकों का शोषण करने लगे।

❒ निष्कर्ष

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार द्वारा भारत में अनेक प्रकार की भू-राजस्व व्यवस्था को लागू किया गया था। प्राय: सभी प्रकार की भू-राजस्व व्यवस्थाओं के मुख्यत: 2 उद्देश्य थे - प्रथम, अधिकाधिक धन प्राप्त करना । द्वितीय, कृषकों की सुरक्षा। किन्तु इन दोनों उद्देश्यों में आंतरिक विरोधाभास था। प्रथम उद्देश्य की पूर्ति कृषकों के शोषण के उपरांत ही हो सकती थी। यही कारण है कि सभी प्रकार की भू-राजस्व व्यवस्था में ब्रिटिश सरकार को तो आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ, किन्तु कृषकों की स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई। कुल मिलाकर ब्रिटिश भू-राजस्व नीति से किसानों का निर्धनीकरण, ग्रामीण ऋणग्रस्तता, महाजनी प्रथा, कृषि दासता, उत्पादन में कमी आदि समस्याओं का विस्तार हुआ।

❒ समग्र ब्रिटिश भू-राजस्व नीति का प्रभाव

ब्रिटिश भू-राजस्व व्यवस्था के तहत् लाई गई विभिन्न प्रणालियों में ऊपरी तौर पर चाहे जो भिन्नता रही हो, किन्तु प्रमुख लक्ष्य ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों को पूरा करना तथा आर्थिक अधिशेष को भारत से निकालना था। ब्रिटिश भू-राजस्व नीति के दुष्प्रभावों को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है -

1) **भूमि को हस्तांतरणीय बनाना** - ब्रिटिश भू-राजस्व नीति के अन्तर्गत भूमि को क्रय-विक्रय योग्य बना दिया गया था, जिससे विपत्ति के समय कर न चुकाने की स्थिति में जमीन को बेचा या गिरवी रखा जाने लगा। इससे भूमि के विखण्डीकरण को प्रोत्साहन मिला, परिणामस्वरूप अनेक समस्याओं का जन्म हुआ - भूमि के दाम बढ़ने लगे, संयुक्त परिवार टूटने लगे, न्यायिक विवादों में वृद्धि हुई, ग्रामीण ऋणग्रस्तता बढ़ी आदि।

2) **उत्पादन में कमी** - अत्यधिक लगान के कारण किसान पूंजीविहीन हो गए थे। अत: वे कृषि के विकास हेतु खाद, उन्नत बीज, नवीन तकनीकी आदि का प्रयोग नहीं कर सके, फलत: उत्पादन मे गिरावट आई। इसके विपरीत जिनके पास पूंजी थी, जैसे - जमींदार, साहूकार आदि उनकी रूचि भी कृषि विकास में नहीं थी। इसका प्रमुख कारण यह था कि सूर्यास्त कानून के अन्तर्गत अत्यधिक लगान के कारण प्राय: ग्रामीण जमींदारों की जगह दूरस्थ जमीदारों को ही भूमि का स्वामित्व दे दिया गया था, अत: इन शहरी जमींदारों ने ग्रामीण क्षेत्रों में धन निवेश करने में रूचि नहीं दिखाई।

3) **अनुपस्थित जमींदारी प्रथा का विकास** - इसके परिणामस्वरूप जहां एक ओर कृषकों के शोषण को प्रोत्साहन मिला, वहीं दूसरी ओर कृषि का अपेक्षित विकास नहीं हो सका।

4) **कृषकों की ऋणग्रस्तता** - ब्रिटिश भू-राजस्व नीतियों ने किसानों को दरिद्र बनाकर उन्हें कर्ज के बोझ तले दबा दिया। फलत: वे साहूकारों के चंगुल में फंस गए और कृषक से भूमिहीन मजदूर में तब्दील हो गए।

5) **अकाल एवं भुखमरी में वृद्धि** - अत्यधिक लगान होने के कारण तथा ब्रिटेन में कच्चे माल की मांग के कारण किसानों को परम्परागत् खाद्यान्न के जगह नकदी फसलों को उपजाने हेतु बाध्य होना पड़ा। फलत: अकाल एवं भूखमरी में वृद्धि हुई।

6) **कृषि क्षेत्र में नवीन वर्गों का उदय** - ब्रिटिश भू-राजस्व नीति ने कृषि क्षेत्र में नवीन वर्गों को जन्म दिया। स्थायी बंदोबस्त के कारण जमींदारों का उदय भू-स्वामी के रूप में हुआ, तो कृषकों का मजदूर एवं दास के रूप में। वहीं रैय्यतवाड़ी व्यवस्था

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

के कारण साहूकारों व महाजनों का उदय हुआ। इस प्रकार ब्रिटिश भू-राजस्व नीति के कारण 3 प्रकार के शोषण तंत्रों का उदय हुआ - ब्रिटिश सरकार, जमींदार तथा साहूकार।

7) **उद्योग की जगह भूमि में पूंजी निवेश को बढ़ावा** - भूमि पर स्वामित्व का अधिकार प्राप्त होने से लोगों का आकर्षण जमीन की ओर बढ़ा। वस्तुत: 19वीं शताब्दी के आरंभ तक कुटीर उद्योग विनाश की स्थिति में पहुंच गए थे। इससे महाजनों एवं साहूकारों ने अपना धन भूमि में लगाना शुरू कर दिया था। परिणामस्वरूप कृषि पर अतिरिक्त दबाव बढ़ा, जिसका नकारात्मक प्रभाव परम्परागत् कृषकों पर पड़ा।

इस प्रकार ब्रिटिश भू-राजस्व नीति ने केवल ब्रिटिश हितों की ही पूर्ति की। यद्यपि इस नीति के अन्तर्गत जमींदारों एवं साहूकारों का एक वर्ग अवश्य अस्तित्व में आया, किन्तु इनकी स्थिति भी अंग्रेजों के समानान्तर कमजोर ही बनी रही। इन्हें अपनी मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा को ताक में रख कर ब्रिटिश साम्राज्य के एजेन्ट के रूप में ही कार्य करना पड़ा। जबकि ब्रिटिश भू-राजस्व नीति का सर्वाधिक नुकसान कृषक वर्ग को हुआ। वे ऋणग्रस्तता एवं भुखमरी के शिकार हुए तथा उनका अस्तित्व कृषि मजदूर या दास के रूप में रह गया।

कृषि का व्यवसायीकरण

कृषि के व्यवसायीकरण से तात्पर्य हैं - खाद्यान्न फसलों के बदले नकदी फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहन। ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में नकदी फसलों, जैसे - चाय, कॉफी अफीम, कपास आदि की खेती पर बल दिया गया।

- **कारण एवं उद्देश्य**

1) कृषकों को भू-राजस्व की बड़ी राशि नकद रूप में देनी होती थी, जो कि खाद्यान्न फसलों की बिक्री से नहीं, बल्कि नकदी फसलों की बिक्री से ही प्राप्त हो सकता था। अत: कृषक खाद्यान्न फसलों की बजाय व्यवसायिक फसलों के उत्पादन हेतु बाध्य थे।

2) ब्रिटेन स्थित कारखानों के लिए भी कच्चे माल के रूप में नकदी फसलों की ही आवश्यकता थी, अत: भारत में अंग्रेजों द्वारा कृषकों को नकदी फसलों के उत्पादन हेतु विवश किया गया।

3) ईस्ट इंडिया कंपनी को चीन से होने व्यापार में आर्थिक हानि होती थी, क्योंकि इंग्लैण्ड एवं उसके उपनिवेशों में चाय का आयात मुख्यत: चीन से ही किया जाता था। अत: इस आर्थिक हानि को पूरा करने हेतु भारत में नकदी फसल, जैसे- चाय एवं अफीम के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया गया। अफीम का निर्यात मुख्यत: चीन को किया जाता था।

- **प्रभाव**
  - **सकारात्मक**

1) स्वनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था विश्व अर्थव्यवस्था से जुड़ गई।

2) कृषि का पूंजीवादी रूपांतरण हुआ, अर्थात् - कृषि में निवेश किया जाने लगा।

3) कुछ विशेष क्षेत्रों, जैसे - महाराष्ट्र एवं कृष्णा-कावेरी डेल्टा आदि में कृषकों का एक समृद्धशाली वर्ग अस्तित्व में आया।

4) अंग्रेजों द्वारा नकदी फसलों से अधिकतम लाभ प्राप्त करने हेतु भारत में यातायात एवं संचार के साधनों का विकास किया गया। यातायात तथा संचार के साधनों के विकास ने राजनीतिक चेतना को मजबूत किया ।

  - **नकारात्मक**

1) भारत में नकदी फसलों के आगमन के साथ कृषि में तकनीकी विकास नहीं किया गया, जिससे न तो अपेक्षित उत्पादन हुआ और न ही कृषि योग्य भूमि का विकास हुआ।

2) नकदी फसलों का प्रमुख लाभ मध्यस्थ वर्ग को ही प्राप्त हुआ, क्योंकि कृषक नकदी फसलों को व्यापारियों, जमींदारों एवं महाजनों के माध्यम से ही बाजार में बेचते थे।

3) नकदी फसलों के उत्पादन से आर्थिक असमानता बढ़ी। जहां मध्यस्थ वर्ग धनवान, वहीं कृषक गरीब होते गए।

4) नकदी फसलों के उत्पादन को प्राथमिकता दिए जाने से भारत में खाद्यान्न फसलों का उत्पादन कम हो गया। साथ ही भारत से खाद्यान्न फसलों का निर्यात इंग्लैण्ड होता रहा, जिससे भारत में भुखमरी को प्रोत्साहन मिला। कोयम्बटुर का एक कृषक यह कहता हैं कि हम 'नकदी फसलों का उत्पादन इसलिए करते हैं, क्योंकि हम इसे खा नहीं सकते।'

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

5) नकदी फसलों के उत्पादन हेतु कृषकों को अधिक धन की आवश्यकता होती थी, जो कि वे महाजनों से ऋण के रूप में प्राप्त करते थे। इस प्रकार नकदी फसलों के उत्पादन से ग्रामीण ऋणग्रस्तता को भी प्रोत्साहन मिला।

- **समीक्षा**

एडम स्मिथ के अनुसार नकदी फसलों का उत्पादन आर्थिक समृद्धि को प्रोत्साहन देता है। इसी सिद्धांत के आधार पर ब्रिटिश विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ब्रिटिश शासन के अंतर्गत वाणिज्यिक कृषि को प्रोत्साहन दिया गया, जिससे भारत में आर्थिक समृद्धि आई। किन्तु भारत में कृषि का व्यवसायीकरण स्वाभाविक रूप से न होकर ब्रिटिश सरकार द्वारा थोपा गया था। साथ ही न तो इंग्लैण्ड के अनुरूप भारत में व्यवसायिक कृषि के विकास हेतु नवीन वैज्ञानिक तकनीकी को प्रोत्साहन दिया गया और न ही कृषकों को बाजार कीमतों पर व्यावसायिक फसलों का वास्तविक मूल्य मिल पाया। यही कारण हैं कि औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत् वाणिज्यिक फसलों के उत्पादन ने भारत में समृद्धि की बजाय दरिद्रीकरण को ही अधिक प्रोत्साहन मिला।

वि-औद्योगीकरण या हस्तशिल्प उद्योग का पतन

वि-औद्योगीकरण से तात्पर्य है - किसी देश के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का अंशदान बढ़ते जाना एवं उद्योगों का अंशदान कम होते जाना। वि-औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप भारत में हस्तशिल्प उद्योगों का पतन हो गया।

- **पतन के कारण**

1) प्लासी के युद्ध के बाद अंग्रेजों द्वारा बंगाल के दस्तकारों एवं शिल्पियों का शोषण किया गया। अंग्रेजो ने भारत में हस्तशिल्प उद्योगों से जुड़े लोगों को कच्चा माल प्राप्त करने में रुकावट पैदा की। साथ ही शक्ति के बल पर उन्हें अंग्रेजों के लिए काम करने हेतु विवश किया गया। दस्तकारों एवं कारीगरों की स्थिति इस स्तर तक दयनीय हो गई थी कि कई दस्तकारों एवं कारीगरों ने अपने हाथ के अंगुठे काट लिए थे।

2) 1813 ई. के चार्टर एक्ट के द्वारा भारत का बाजार ब्रिटिश वस्तुओं के लिए खोल दिया गया। दूसरी ब्रिटेन के बाजार भारतीय वस्तुओं के लिए बंद कर दिए गए।

3) रेलवे के विकास ने भी हस्तशिल्प उद्योग के पतन में योगदान दिया। रेलवे के माध्यम से दूरस्थ क्षेत्रों से न केवल कच्चा माल प्राप्त किया जाता था, बल्कि इन क्षेत्रों में ब्रिटिश वस्तुओं को भी आसानी से पहुंचाया जा सकता था।

4) अंग्रेजों द्वारा देशी रियासतों को समाप्त कर ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया। इससे भारतीय हस्तशिल्प उद्योगों के संरक्षक एवं खरीदार वर्ग का अंत हो गया।

5) अंग्रेजी शिक्षा पद्धति के परिणामस्वरूप भारत में एक नवीन पीढ़ी का उदय हुआ, जिसकी रूचि शिल्प उद्योगों में निर्मित वस्तुओं की अपेक्षा ब्रिटिश उद्योगों में निर्मित वस्तुओं में ही थी।

6) अंग्रेजों ने ददनी प्रथा के माध्यम से भी दस्तकारों पर अत्याचार किए, जिससे उन्होंने उत्पादन करना ही बंद कर दिया। ददनी प्रथा में जुलाहों को वस्त्र उत्पादन हेतु अग्रिम धन दिया जाता था तथा निश्चित समय के अन्दर उन्हें उत्पादन करने हेतु बाध्य किया जाता था। चूंकि कच्चे माल पर अंग्रेजों का नियंत्रण था, अत: जुलाहों को यह बहुत ऊँचे मूल्य पर ही मिल पाता था।

- **प्रभाव**
  - **सकारात्मक**

1) परम्परागत उद्योगों के पतन के कारण ही भारत में आधुनिक उद्योगों के विकास का मार्ग प्रशस्त हो सका।

2) हस्तशिल्प उद्योगों से जुड़े लोगों ने आधुनिक सर्वहारा वर्ग का रूप धारण कर लिया तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान ब्रिटिश सरकार के सामने गंभीर चुनौती उपस्थित की।

  - **नकारात्मक**

1) भारत में ब्रिटेन और पश्चिम यूरोप की तरह हस्तशिल्प उद्योगों के पतन के साथ आधुनिक उद्योगों का विकास नहीं हुआ। हस्तशिल्प उद्योगों से मुक्त हुई लोगों ने बाध्य होकर कृषि को अपना लिया, जिससे कृषि पर अतिरिक्त बोझ बढ़ा। फलत: कृषि उत्पादन प्रभावित हुआ तथा ग्रामीण ऋणग्रस्तता बढ़ी।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

2) ग्रामीण शिल्पों के पतन ने कृषि तथा घरेलू उद्योग की एकता को तोड़ दिया। फलस्वरूप स्वावलंबी ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विनाश हो गया।

3) चूंकि हस्तशिल्प उद्योगों का पतन हो गया, अत: इनसे जुड़े लोगों के द्वारा भारतीय औद्योगीकरण प्रारंभ नहीं किया जा सका।

4) हस्तशिल्प उद्योगों के पतन के साथ इनसे जुड़े महत्वपूर्ण नगरों, जैसे - ढाका, मुर्शिदाबाद, सूरत आदि का भी पतन हो गया।

5) विलियम बैंटिक ने 1834-35 ई. में लिखा था कि - "हस्तशिल्प उद्योगों के पतन से उत्पन्न हुई दरिद्रता के समान दरिद्रता इतिहास में शायद ही कभी रही हो, बुनकरों की हड्डियां भारत के मैदानों को विरंजित (रंग) कर रही है।"

भारत में रेलवे का विकास

ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारत में किए गए निर्माण कार्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण रेलवे प्रणाली का विकास माना गया है। भारत में प्रथम रेलवे लाईन 1853 ई. में मुम्बई-थाणे के बीच तथा 1905 ई. तक 45 हजार किमी लंबी रेल लाईनें बिछाई जा चुकी थीं।

- **कारण एवं उद्देश्य**

भारत में रेलवे के विकास हेतु निम्नलिखित कारण एवं उद्देश्य निहित थे-

1) **राजनीतिक उद्देश्य** -ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था का एकीकरण करना तथा ब्रिटिश सेना द्वारा रेलवे की सहायता से भारतीय विद्रोहों को तीव्रता से दबाना।

2) **आर्थिक उद्देश्य** -ब्रिटेन में औद्योगिक विकास के फलस्वरूप संचित हो चुकी अतिरिक्त राशि का निवेश करना, भारत के दूरदराज के क्षेत्रों से कच्चा माल प्राप्त करना तथा ब्रिटिश उद्योगों में निर्मित माल को पहुंचाना।

3) **सामाजिक एवं धार्मिक उद्देश्य** -रेलवे के माध्यम से सामाजिक एवं धार्मिक गतिशीलता को स्थापित कर एक आधुनिक समाज का निर्माण करना, ताकि वह विदेशी वस्तुओं का खरीददार बन सके ।

- **प्रभाव**
  - **सकारात्मक**

1) **राजनीतिक क्षेत्र** - रेलवे के परिणामस्वरूप भारत में प्रशासनिक एकरूपता आई, जिससे प्रशासन की दक्षता में वृद्धि हुई। साथ ही रेलवे ने राष्ट्रवाद के प्रचार एवं प्रसार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

2) **आर्थिक क्षेत्र** - रेलवे के माध्यम से ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के बाजारों की भौगोलिक दूरी कम हो गई, जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था का एकीकरण हुआ। साथ ही स्वतंत्रता के पश्चात् रेलवे ने आर्थिक विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

3) **सामाजिक क्षेत्र** - लोग रेल के डिब्बों में साथ-साथ यात्रा करते थे, रेल स्टेशनों में खान-पान करते थे, जिससे परम्परागत, जातिबंधन तथा छुआ-छूत का प्रभाव कमजोर होने लगा।

  - **नकारात्मक**

1) **राजनीतिक क्षेत्र** - रेलवे की सहायता से अंग्रेजो ने राष्ट्रवादी आंदोलनों का सफलतापूर्वक दमन किया। उदाहरणार्थ - 1857 के विद्रोह को कुचलने में रेलवे ने अंग्रेजो की बड़ी सहायता की।

2) **आर्थिक क्षेत्र** - रेलवे के माध्यम से ब्रिटिश उद्योगों के लिए भारत के दूरदराज क्षेत्रों से कच्चा माल प्राप्त किया जा सका तथा इन क्षेत्रों पर निर्मित माल पहुंचाया जा सका। इससे भारत के हस्तशिल्प उद्योगों को न तो कच्चा माल प्राप्त हो सका और न ही सस्ता बाजार, परिणामस्वरूप हस्तशिल्प उद्योग का पतन हो गया। साथ ही रेलवे के निर्माण हेतु ब्रिटिश सरकार द्वारा कृषकों पर अधिकाधिक राजस्व प्राप्त करने का प्रयास किया गया, जिससे कृषकों के शोषण को प्रोत्साहन मिला।

सबसे बढ़कर भारत में रेल लाईनों के विकास में लगभग 350 करोड से अधिक की पूंजी ब्रिटेन के निजी निवेशकों के द्वारा लगाई गई थी। ब्रिटिश सरकार ने इन निवेशकों को 5 प्रतिशत लाभांश की गारंटी भी दी। आरंभ के 50 वर्षों में रेलवे से वित्तीय घाटा ही होता रहा, बावजूद इसके ब्रिटिश सरकार ने निजी निवेशकों को 5 प्रतिशत का लाभ दिया। इस रूप में भारत से एक बड़ी संपत्ति का निष्कासन इंग्लैण्ड होता रहा।

3) **सामाजिक क्षेत्र** - रेलवे ने विसंस्कृतिकरण एवं सामाजिक संघर्षों को जन्म दिया।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **समीक्षा**

1853 ई. में मार्क्स ने कहा था कि रेलवे आधुनिक औद्योगीकरण लेकर आएगा। मार्क्स का यह कथन ब्रिटेन, जर्मनी, जापान, आस्ट्रेलिया, कनाडा आदि देशों के संदर्भ में तो सत्य साबित हुआ, किन्तु भारत के संदर्भ में नहीं। वस्तुतः भारत में रेलवे ने औद्योगिक विकास की बजाय दरिद्रीकरण को ही बढ़ावा दिया, इसके पीछे निम्नलिखित कारण उत्तरदायी हैं –

1) भारत में किए गए रेलवे निर्माण में पूंजी विनियोग पर 5 प्रतिशत लाभ की गारंटी दी गई। इससे रेलवे कंपनियों ने रेल लाईनों के निर्माण में फिजूलखर्ची की। जहां इंग्लैण्ड में प्रति मील रेल लाईन निर्माण पर 9000 पाउंड खर्च हुआ था, वहीं भारत में इसकी लागत 30,000 पाउंड थी। इस प्रकार भारत की संपत्ति नष्ट होती गई, जिससे औद्योगिक विकास प्रभावित हुआ।

2) भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में रेलवे के आगमन के साथ उस पर आधारित उद्योगों की भी स्थापना हुई थी। किन्तु भारत में रेलवे हेतु आवश्यक इंजन, डिब्बे, कलपूर्जे आदि का निर्यात ब्रिटेन से ही होता रहा। फलस्वरूप रेल मार्गों के विकास के साथ दूसरे भारी उद्योगों का स्वाभाविक विकास जो भारत में होना चाहिए था, वह नहीं हुआ।

3) रेलवे के माध्यम से भारत के दूरस्थ क्षेत्रों से आसानी से कच्चा माल प्राप्त किया जा सका। साथ ही इन क्षेत्रों में ब्रिटिश उद्योगों में निर्मित वस्तुओं को पहुंचाया जा सका। इससे भारत के हस्तशिल्प उद्योगों का पतन हो गया।

4) अंग्रेजों ने रेलवे माल-भाड़ा की दर भी ब्रिटिश उद्योगों हेतु कम तथा भारतीय उद्योगों हेतु अधिक निर्धारित की थी। इससे भी भारतीय उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

- **निष्कर्ष**

इस प्रकार यह कहा जा सकता हैं कि रेलवे ने जिस गति से ब्रिटिश साम्राज्यवाद को प्रसारित एवं सुदृढ़ किया तथा ब्रिटिश उद्योगों को प्रत्यक्ष रूप से लाभ पहुंचाया, वह भारतीयों को मिले अप्रत्यक्ष लाभों की तुलना में कही अधिक था। इस दृष्टि से रेलवे ने औद्योगिक विकास को नहीं, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद को भी मजबूती प्रदान की।

धन का निष्कासन

धन निकासी से तात्पर्य भारतीय धन-सम्पदा का विदेशों में गमन और उसके बदले भारत को कुछ भी प्राप्त न होने से है। सर्वप्रथम दादाभाई नौरोजी ने 1867 ई. में 'इंग्लैण्ड डेप्ट टू इंडिया' नामक लेख में धन निकासी का सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। आगे आर. सी. दत्त, सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी, जी. वी. जोशी, राणाड़े आदि विद्वानों ने भी धन की निकासी के संदर्भ में ब्रिटिश सरकार की आलोचना की।

- **धन निकासी के स्रोत**

धन की निकासी की समस्या प्लासी के युद्ध के पश्चात् प्रारंभ हुई। प्लासी के युद्ध के पूर्व यूरोप के व्यापारी बाहर से धन लाकर भारत में वस्तुओं को खरीकर इन वस्तुओं को विदेशी बाजारों में अधिक कीमतों पर बेचते थे, किन्तु प्लासी एवं बक्सर के युद्ध के पश्चात् बंगाल में कंपनी की सत्ता स्थापित हो गई। अब भारत से वाणिज्यिक वस्तुओं की खरीदी के लिए बंगाल से प्राप्त लूट का धन, व्यापार से प्राप्त लाभांश तथा बंगाल से प्राप्त दीवानी का उपयोग किया जाने लगा। इस प्रकार धन की निकासी की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई। आगे धन की निकासी के रूप में अनेक मदें शामिल होती गईं, जैसे –

1) अंग्रेजी अधिकारियों के वेतन, भत्ते, पेंशन आदि।

2) भारत में साम्राज्य विस्तार एवं विद्रोहों को दबाने के लिए अंग्रेजी सरकार द्वारा लिए गए ऋण पर ब्याज।

3) कंपनी के शेयरधारकों को दिया जाने वाला लाभांश (Dividend)।

4) व्यापार, उद्योग, बागान में निवेश की गई निजी पूंजी की आय।

5) गृह व्यय (Home Charge) के अन्तर्गत रेलवे पर प्रत्याभूत ब्याज, भारत सचिव के ऑफिस का खर्च आदि को रखा गया।

- **धन निकासी की मात्रा**

दादाभाई नौरोजी के अनुसार 1757 ई. से 1865 ई. के बीच भारत से 150 करोड़ पौण्ड का निष्कासन हुआ। उसी प्रकार दिनशा वाचा के अनुसार 1860 ई. से 1920 ई. के बीच भारत से 30-40 करोड़ रुपया प्रतिवर्ष का निष्कासन हुआ। कुल मिलाकर भारत से कितना धन इंग्लैण्ड जाता था, इसका आकलन करना कठिन है। किन्तु यह निश्चित है कि भारत से इंग्लैण्ड एक बहुत बड़ी राशि की निकासी हुई, जो सरकारी आंकड़ों से कहीं अधिक थी।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **प्रभाव**
  - **सकारात्मक**

1) धन निकासी ने भारत में राष्ट्रीयता के विकास में भी अपना योगदान दिया। कुछ भारतीय अर्थशास्त्रियों ने धन की निकासी का सिद्धान्त प्रतिपादित कर अंग्रेजों के शोषणमूलक चरित्र को उजागर किया तथा ब्रिटिश औपनिवेशिक हितों के खिलाफ आवाज उठाई। इससे भारत में राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ।

2) स्वतंत्रता संग्राम के दौरान धन की निकासी का मुद्दा सदैव अंग्रेजों के विरुद्ध एक हथियार के रूप में प्रयोग किया गया।

3) धन निकासी के विरोध में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार हेतु कई आंदोलन हुए, जिससे स्वदेशी वस्तुओं को प्रोत्साहन मिला।

  - **नकारात्मक**

1) लगातार धन निष्कासन होने से अधिशेष पूंजी का निर्माण नहीं हो सका। इससे भारत में निवेश की संभावना समाप्त हो गई तथा रोजगार एवं प्रतिव्यक्ति आय में कमी आई। कुल मिलाकर भारत में 'अविकास के विकास' का सबसे बड़ा कारण धन की निकासी ही थी।

2) धन निकासी से कृषि उत्पादन में गिरावट, हस्तशिल्प उद्योगों का पतन एवं आधुनिक उद्योगों का विकास अवरुद्ध हो गया।

3) धन निकासी से इंग्लैण्ड में औद्योगिक विकास हुआ, जिससे ब्रिटिश साम्राज्यवाद का कार्य आसान हो गया।

- **समीक्षा**
  - **ब्रिटिश विद्वानों का मत**

अनेक ब्रिटिश विद्वानों ने धन निकासी की अवधारणा को गलत, भ्रामक एवं ब्रिटिश शासक को जानबूझकर बदनाम करने वाला षड्यंत्र कहा है। इन विद्वानों ने अपने मत के समर्थन में कुछ तर्क भी दिए हैं –

1) धन निकासी में सबसे बड़ा हिस्सा विदेशी ऋणों पर दिया जाने वाला ब्याज माना गया है, किन्तु भारत में यह ऋण रेलवे के विकास, सिंचाई साधनों तथा अन्य उद्योगों के विकास के लिए लिया गया था। इन लाभों के बदले यदि भारत को ब्याज के रूप में थोड़ी-सी रकम का भुगतान करना भी पड़ा, तो उसे निकासी नहीं कहा जा सकता है।

2) गृह व्यय एवं यूरोपीय कर्मचारियों द्वारा अपनी बचत को बाहर भेजना भी धन की निकासी नहीं है। वस्तुत: निस्वार्थ एवं योग्य ब्रिटिश अधिकारियों की जो सेवाएं प्राप्त हुईं तथा उन्होंने जो विदेशी आक्रमण से सुरक्षा एवं लोककल्याणकारी सरकार उपलब्ध करवाई, उसके बदले में ही भारत को गृह व्यय तथा कर्मचारियों के वेतन के रूप में कुछ खर्च करना पड़ा। यदि अंग्रेज विदेशी आक्रमणों से रक्षा करके शांति एवं सुरक्षा का वातावरण न बनाते, तो भारत में किसी प्रकार की प्रगति न होती।

  - **भारतीय विद्वानों का मत**

भारतीय विद्वानों ने इन समस्त आलोचनाओं का जवाब देते धन निकासी के सिद्धान्त को वास्तविक माना है। उनके अनुसार –

1) भारत को विदेशी ऋण की आवश्यकता इसलिए पड़ी, क्योंकि अंग्रेज भारत की संपत्ति लूट रहे थे। यदि भारत में पूंजी रहती, तो भारत को रेलवे जैसे विकास कार्यों के लिए ब्रिटिश पूंजी की आवश्यकता ही नहीं होती। सबसे बढ़कर ब्रिटिश ऋण पर दिए गए ब्याज को धन निकासी नहीं माना जाता, यदि भारत ने अपनी इच्छा से ऋण लिए होता।

2) यदि कोई सेवा देश के लिए उपयोगी है और उसे विदेशों से ही प्राप्त किया जा सकता है, तो उसके लिए किया गया भुगतान निश्चय ही निकासी में शामिल नहीं किया जाना चाहिए। किन्तु यदि वह सेवा निरर्थक है अथवा भारत में ही उपलब्ध है, तो ऐसी विदेशी सेवा के लिए किया गया भुगतान अवश्य ही निकासी में शामिल होगा।

- **निष्कर्ष**

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि भारतीय विद्वानों ने धन निकासी के सिद्धान्त के आलोचकों को एक-एक तर्क का जवाब देते हुए यह सिद्ध किया है कि ब्रिटिश शासन के दौरान धन की निकासी हुई। यद्यपि धन की निकासी कितनी हुई और उसमें किन-किन मदों को शामिल किया जाना चाहिए, इस बात को लेकर मतभेद हो सकता है, किन्तु इसमें कोई शक नहीं कि अंग्रेज भारत की संपत्ति को लूटते रहे तथा भारत को दरिद्र बनाते रहे। महमूद गजनबी द्वारा 17 बार भारत का धन लूटा गया, जो ब्रिटिश शासन के लगभग 100 वर्षों की निरंतर निकासी की तुलना में मात्रा एवं प्रभाव की दृष्टि से नगण्य दिखता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

ब्रिटिश शासन के प्रति भारतीयों की प्रतिक्रिया - कृषक एवं आदिवासियों का विद्रोह
Indian Response to British Rule : Peasant and Tribal Revolts

ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति ने भारत में जिस शोषणकारी व्यवस्था को जन्म दिया था, उसके विरुद्ध भारत में अनेक जनविद्रोह हुए। वस्तुत: ब्रिटिश सरकार की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक नीतियों के विरोध में भारत में विभिन्न वर्गों, देशी राजाओं, जमींदारों, धार्मिक नेताओं, किसानों, आदिवासियों एवं सैनिकों ने अनेकों बार विद्रोह किया। इन समस्त प्रकार के विद्रोहों को मोटे तौर पर 4 भागों में बांटा जा सकता है - नागरिक विद्रोह, कृषक विद्रोह, जनजाति विद्रोह एवं सैनिक विद्रोह।

कृषक विद्रोह

ब्रिटिश आर्थिक नीतियों का सर्वाधिक दुष्परिणाम कृषकों को भुगतना पड़ा था। उन्हें न केवल ब्रिटिश अधिकारियों, बल्कि जमींदारों, एवं महाजनों के भी अत्याचारों का सामना करना पड़ा था। फलत: गरीबी, भुखमरी एवं ऋणग्रस्तता से पीड़ित कृषकों ने अनेकों बार विद्रोह किए। यद्यपि कृषकों को तत्कालिक रूप से कोई महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु इनके विद्रोह से उपजे कृषक असंतोष ने आगे कांग्रेस के अन्तर्गत चलाए गए राष्ट्रीय आन्दोलन में राष्ट्रवादियों को महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया।

- **कारण**

1) **ब्रिटिश भू-राजस्व नीति** - ब्रिटिश भू-राजस्व नीति का सर्वाधिक नुकसान कृषकों को हुआ था। वे अंग्रेज अधिकारियों, जमींदारों एवं महाजनों के अत्याचारों से पीड़ित थे। उन्हें भुखमरी, ऋणग्रस्तता, कृषि दासता जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। परिणामस्वरूप अपनी ही संपत्ति से अलग कर दिए गए कृषकों ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध अनेक विद्रोह किए।

2) **ब्रिटिश औद्योगिक नीति** - ब्रिटिश औद्योगिक नीति के अन्तर्गत व्यवसायिक खेती को प्रोत्साहन दिया गया था। इससे खाद्यान्न की कमी हो गई तथा कृषकों को भुखमरी का सामना करना पड़ा। साथ ही ब्रिटिश औद्योगिक नीति के कारण हस्तशिल्प उद्योगों का पतन हो गया था, जिससे इस क्षेत्र से जुड़े लोगों ने कृषि में रूचि दिखाई। इससे कृषि पर अतिरिक्त जनसंख्या का दबाव बढ़ा, कृषि उत्पादन में कमी आई तथा कृषकों के शोषण को प्रोत्साहन मिला। परिणामस्वरूप कृषकों ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध कई विद्रोह किए।

3) **विश्व आर्थिक मंदी** - प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटेन को 1929 ई. की आर्थिक मंदी का सामना करना पड़ा था। इस आर्थिक संकट से उभरने हेतु अंग्रेजों द्वारा भारत में कृषकों का अत्यधिक शोषण किया जाने लगा। कृषकों पर लगान बढ़ा दिया गया, उन्हें जबरन जमीन छोड़ने हेतु विवश किया गया। परिणामस्वरूप कृषकों ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध कई विद्रोह किए।

4) **रूसी क्रांति का प्रभाव** - 1917 ई. की रूसी क्रांति की सफलता में मजदूरों व कृषकों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इस क्रांति की सफलता से भारत के कृषकों को भी अपनी शक्ति का एहसास हुआ, फलत: उन्होंने ब्रिटिश अत्याचारों का विरोध किया।

5) **कृषक संगठनों का उदय** - भारत में 20वीं शताब्दी में अनेक कृषक संगठनों, जैसे - 1918 ई. में यूपी किसान सभा तथा 1936 ई. में अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना हुई। इन संगठनों ने कर्ज माफी, लगान में कमी, स्वैच्छिक फसल उगाने का अधिकार जैसी बातों को उठाकर कृषकों को आंदोलन हेतु प्रोत्साहित किया।

- **स्वरूप**

भारत में हुए कृषक आन्दोलनों को 2 चरणों में बांटकर समझा जा सकता है - 19वीं शताब्दी के कृषक आन्दोलन तथा 20वीं शताब्दी के कृषक आन्दोलन। 19वीं एवं 20वीं शताब्दी में हुए कृषक आन्दोलनों के स्वरूप में पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है।

19वीं शताब्दी के कृषक आन्दोलनों का उद्देश्य स्थानीय समस्याओं के निराकरण तक सीमित था। उनकी प्रमुख मांग भू-राजस्व में कमी, इच्छानुसार फसलों की बुआई, जमींदारों के शोषण से मुक्ति आदि थी। इस दौर के कृषक आन्दोलनों का दृष्टिकोण संकीर्ण था। वे ब्रिटिश सरकार के औपनिवेशिक चरित्र को नहीं समझ सके। हमें पावना विद्रोह के दौरान दिखाई देता है कि यहां कृषकों का विद्रोह जमींदारों के विरुद्ध था न कि ब्रिटिश व्यवस्था के। इस विद्रोह के दौरान कृषकों ने कहा था कि 'हम विक्टोरिया की रैय्यत है और उसी की रैय्यत रहना चाहते हैं।' 19वीं शताब्दी के कृषक आन्दोलनों का नेतृत्व स्थानीय लोगों ने ही संभाला, न कि किसी राष्ट्रीय नेता ने। साथ ही इस दौर के कृषक आन्दोलनों के विरोध का तरीका हिंसा एवं बल के प्रयोग से अपने अधिकारों की प्राप्ति करना था।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

20वीं शताब्दी के कृषक आन्दोलनों के स्वरूप में हमें व्यापक अन्तर दिखाई देता है। अब कृषक विद्रोहों का उद्देश्य स्थानीय के साथ-साथ राष्ट्रीय स्तर पर भू-राजस्व नीति में सुधार करना हो गया था। उनका दृष्टिकोण भी अधिक व्यापक हो गया था। अब वे ब्रिटिश शासन के वास्तविक चरित्र को समझ चुके थे। साथ ही इस दौर के कृषक आन्दोलनों को स्थानीय नेतृत्व के साथ-साथ राष्ट्रीय नेतृत्व एवं कृषक संगठनों का सहयोग भी प्राप्त हुआ। उसी प्रकार 20वीं शताब्दी के कृषक आन्दोलनों के विरोध का तरीका सत्याग्रह, धरना, गिरफ्तारियां एवं वैधानिक तरीके से अपने अधिकारों का प्राप्ति हो गया था।

- **19वीं शताब्दी के प्रमुख किसान आंदोलन**

1) **नील विद्रोह (1859 ई. - 1860 ई.)** - बंगाल का नील विद्रोह शोषण के विरुद्ध किसानों की सीधी लड़ाई थी। बंगाल के वे काश्तकार, जो अपने खेतों में चावल की खेती करना चाहते थे, उन्हें यूरोपीय नील बगान मालिक नील की खेती करने के लिए मजबूर किया करते थे। सितंबर 1859 ई. में उत्पीड़ित किसानों ने अपने खेतों में नील न उगाने का निर्णय लेकर बागान मालिकों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। बंगाल के नादिया जिले में स्थित गोविंदपुर गांव में स्थानीय नेता दिगम्बर विश्वास और विष्णु विश्वास के नेतृत्व में किसानों ने नील की खेती बंद कर दी।

किसानों की एकजुटना के कारण 1860 ई. तक बंगाल में सभी नील कारखाने बंद हो गए। बंगाल के बुद्धिजीवियों ने अखबारों तथा अपने लेखों के द्वारा किसानों को समर्थन दिया। इसमें हिन्दु पैट्रियाट के संपादक हरिषचंद्र मुखोपाध्याय की विशेष भूमिका रही। नील बागान मालिकों के अत्याचार का खुला चित्रण दीनबंधु मित्र ने अपने नाटक 'नील दर्पण' में भी किया है। इस आंदोलन में किसानों ने बागान मालिकों के विरुद्ध मुकदमे दायर किए, किन्तु यूरोपीय जज, जो स्वयं बागान मालिक थे, किसानों के विरुद्ध निर्णय दिए। अत: किसानों के द्वारा 'जो रक्षक वही भक्षक' का नारा दिया गया। 1860 ई. में 'नील आयोग' ने कहा कि रय्यतों को नील की खेती करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।

2) **पावना विद्रोह (1873 ई. - 1876 ई.)** - बंगाल में पावना जिले के यूसुफशाही परगने में किसान नेता ईशानचंद्र राय व शंभुपाल के द्वारा जमींदारों के शोषण तथा अत्यधिक कर के विरोध में 1873 ई. में 'एक किसान संघ' की स्थापना हुई। किसानों ने लगान न देने तथा जमींदारों के विरुद्ध मुकदमे करने का कार्य किया।

गांव की प्रजा के द्वारा, जिनमें नाई, धोबी, बढ़ई, मोची तथा लुहार शामिल थे को जमींदारों के कार्य करने से मना कर दिया गया। सरकार द्वारा इस विद्रोह की जांच के लिए एक आयोग गठित किया गया और आयोग की सिफारिश पर 'कृषक राहत अधिनियम 1879 ई.' पारित किया गया। इस विद्रोह में आंदोलनकारियों का नारा था कि 'हम महारानी के रय्यत है' और महारानी के ही रय्यत रहना चाहते हैं। बंगाल के बुद्धिजीवी, जैसे - देवेन्द्रनाथ टैगोर आदि के द्वारा इनका समर्थन किया गया।

2) **दक्कन विद्रोह (1875 ई.)** - महाराष्ट्र के पुणे और अहमदनगर के जिलों में किसानों ने राजस्व में 30 प्रतिशत वृद्धि के विरुद्ध विद्रोह किया। सरकार ने विद्रोह को दबाकर 1879 ई. में दक्कन कृषक राहत अधिनियम द्वारा किसानों को साहूकारों के विरुद्ध कुछ संरक्षण प्रदान किया।

- **20वीं सदी के किसान आंदोलन**

1) **चम्पारण आंदोलन (1917 ई.)** - बिहार के बेतिया और आस-पास के क्षेत्रों में तीन कठिया पद्धति प्रचलित थी। इस पद्धति के तहत नील बागान मालिकों ने चंपारण के किसानों से इस बात का इकरारनामा लिखवा लिया की वे अपनी भूमि के सर्वाधिक उपजाऊ हिस्से के 3/20 भाग (तीन कठिया पद्धति) पर नील की खेती करेंगें। ऐसा नहीं करने पर उन्हें भारी जुर्माना देना होगा। इस तीन कठिया पद्धति से किसानों के आर्थिक हितों पर भारी चोट पड़ती थी।

चंपारण के एक किसान राजकुमार शुक्ल ने गांधीजी को स्थिति के अवलोकन के लिए तैयार कर लिया। गांधीजी के चंपारण आगमन के पश्चात् आंदोलन को बढ़ता देख तत्कालीन अंग्रेजी प्रशासन ने एक आयोग बनाया जिसमें गांधीजी को भी शामिल किया गया। गांधीजी ने बागान मालिकों को बाध्य किया कि वह किसानों को उस राशि का भी भुगतान करें, जो कि उन्होंने अवैध वसूली से प्राप्त किए। अंतत: बागान मलिक 25 प्रतिशत धन वापस करने को तैयार हो गए।

इस आन्दोलन में गांधीजी को ब्रज किशोर, राजेन्द्र प्रसाद, महादेव देसाई, नरहरि पारेख, जे. बी. कृपलानी आदि नेताओं का सहयोग मिला। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इसी सत्याग्रह के दौरान ही गांधीजी को 'महात्मा' की उपाधि दी।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

2) **खेड़ा आंदोलन (1918 ई.)** - यह आंदोलन 1918 ई. में गुजरात राज्य के खेड़ा नामक स्थान में चलाया गया। खेड़ा में इस समय विभिन्न महामारियों तथा अकाल व्याप्त थे, जिसके कारण यहां के किसानों की फसल भी खराब हो गई थी। अत: यहां के किसान मालगुजारी देने में असमर्थ थे। जबरन मालगुजारी के विरोध में यहां के किसानों ने आंदोलन किया। इस आंदोलन का नेतृत्व गांधीजी के द्वारा किया गया। इन्दुलाल याज्ञनिक और विट्ठलभाई पटेल जैसे युवा वकीलों ने गांधी का सहयोग किया। जांच-पड़ताल के बाद यह निष्कर्ष निकाला गया कि राजस्व संहिता के अनुसार पूरा राजस्व माफ कर दिया जाना चाहिए।

गांधीजी की अपील के बाद भी सरकार पर कोई असर नहीं पड़ा, तो गांधीजी ने किसानों से लगान न देने को कहा तथा इस हेतु शपथ भी दिलाई। बाद में सरकार ने गरीब किसानों का लगान माफकर दिया और उन्हीं लोगों से लगान लिया, जो स्वेच्छा से पूरा लगान दे सकते थे। इसके पश्चात् गांधीजी ने आंदोलन वापस ले लिया।

3) **बारदोली सत्याग्रह (1928 ई.)** - सूरत के बारदोली तालुक्के में 1928 ई. में किसानों द्वारा 'लगान न अदाएगी' का आंदोलन चलाया गया। कपास की कीमत गिरने के बाद भी बंबई सरकार द्वारा लगान में 30 प्रतिशत की वृद्धि कर दी गई। इसके विरोध में बारदोली के किसानों ने विद्रोह कर दिया।

इस सत्याग्रह का नेतृत्व वल्लभभाई पटेल ने किया। उन्होंने सरकार से जांच कराने को कहा। जांच रिपोर्ट में बढ़ी हुई 30 प्रतिशत लगान को अवैध करार दिया और लगान को घटाकर 6.03 प्रतिशत कर दिया। 2 अगस्त 1928 ई. तक गांधीजी भी बारदोली पहुंच गए।बरदोली सत्याग्रह के समय ही यहां की महिलाओं की ओर से गांधीजी ने वल्लभभाई पटेल को 'सरदार' की उपाधि प्रदान की।

❐ परिणाम

कृषक आन्दोलनों ने परम्परागत् जमींदारी व्यवस्था एवं साम्राज्यवादी शासन की जड़ें खोद दी। वस्तुत: इन आंदोलनों ने ऐसा माहौल तैयार किया, जिससे राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान राजनीतिक दलों में कृषि सुधार भी एक प्रमुख मांग बन गई। किसान आंदोलनों ने लोगों में जागृति लाने का कार्य किया। अनेक किसान संगठन स्थापित हुए, जिन्होंने न केवल किसान आंदोलन को नेतृत्व प्रदान किया, बल्कि राष्ट्रीय आंदोलन को भी गति प्रदान की।

जनजातीय विद्रोह

ब्रिटिश औपनिवेशिक शोषण के विरुद्ध भारत में अनेक विद्रोह हुए, जिनमें से जनजातीय विद्रोहों का विशेष महत्व है। यद्यपि जनजातियों के द्वारा किए गए ज्यादातर विद्रोह कुचल दिए गए, किन्तु इन विद्रोहों की असफलता से निचले तबके में भी ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति असंतोष उत्पन्न हो गया था, जिसका लाभ स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान राष्ट्रीय नेताओं को प्राप्त हुआ।

❐ कारण

• आर्थिक कारण

जनजातीय विद्रोह का प्रमुख कारण ब्रिटिश आर्थिक नीति को माना जाता है। ब्रिटिश आर्थिक नीति के विरुद्ध मुख्यत: 3 कारणों से विद्रोह हुए -

1) आदिवासियों के जीवन में वनों की बड़ी उपयोगिता थी। आदिवासी परम्परागत् रूप से वनों एवं वन संपदा पर अपना अधिकार मानते थे, किन्तु ब्रिटिश वन नीति के अन्तर्गत् वनों को सरकारी संपत्ति घोषित कर दिया गया तथा आदिवासियों को वन सम्पदा के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। अत: जनजातियों ने ब्रिटिश वन नीति के विरुद्ध विद्रोह किए।

2) ब्रिटिश भू-राजस्व नीति के अन्तर्गत् 1867 ई. में झूम कृषि पर पाबंदी लगा दी गई। साथ ही आदिवासियों पर भी भू-राजस्व निश्चित किया जाने लगा तथा ब्रिटिश सरकार द्वारा आदिवासी क्षेत्रों में जमींदारों एवं महाजनों को स्थापित कर दिया गया। जब इन बिचौलियों के द्वारा जनजातियों का शोषण किया जाने लगा, तब जनजातियों ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध हथियार उठा लिए।

3) ब्रिटिश आबकारी नियमों के अन्तर्गत् 1822 ई. में चावल से बनने वाली शराब पर तथा 1827 ई. में अफीम पर कर लगा दिया गया, जबकि इन नशीले पदार्थों का उपभोग जनजाति परम्परागत् रूप से करते थे। अत: उन्होंने इन कानूनों का विरोध करना शुरू कर दिया।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **राजनीतिक कारण**

ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार के क्रम में अंग्रेजों ने भारत के आदिवासी इलाकों में भी पुलिस थाने व सैनिक छावनियां स्थापित की तथा नवीन कानूनों को लागू किया। अत: पुलिस व सैनिक अधिकारियों के शोषण एवं नवीन ब्रिटिश कानूनों के प्रति असमझ एवं अविश्वास के कारण जनजातियों ने अनेक विद्रोह किए।

- **सामाजिक कारण**

आदिवासी मुख्यत: परम्परागत् सामाजिक मान्यताओं पर विश्वास करते थे। किन्तु ब्रिटिश सरकार ने सामाजिक क्षेत्र में कई नवीन कानून लागू किए, जिनका जनजातियों ने विरोध किया। उदाहरणार्थ – उड़ीसा के खोण्डों ने इस कारण विद्रोह किया था कि सरकार ने उनमें प्रचलित नर-बलि को रोकने की कोशिश की थी।

- **धार्मिक कारण**

1813 ई. के चार्टर एक्ट के उपरान्त ब्रिटिश सरकार द्वारा ईसाई धर्म प्रचारकों को प्रोत्साहित किया गया। ईसाई मिशनरियों के द्वारा अदिवासियों को जबरन ईसाई धर्म में धर्मांतरित किया जाता था। इस कारण भी जनजातियों ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह किए।

❐ स्वरूप

प्राय: जनजातीय विद्रोहों का उद्देश्य स्थानीय समस्याओं के निराकरण तक ही सीमित था, उनका दृष्टिकोण भी संकीर्ण था। जनजाति ब्रिटिश औपनिवेशक शासन का वास्तविक चरित्र नहीं समझ सके। यही कारण था कि उन्होंने जमींदारी व्यवस्था, पुलिस व्यवस्था एवं न्यायपालिका का ही विरोध किया, न कि सम्पूर्ण ब्रिटिश शासन का। जनजातीय विद्रोह मुख्यत: पुरातन व्यवस्था को बनाए रखने एवं नवीन व्यवस्था के विरोध में ही हुए। उनके विरोध का तरीका भी हिंसा एवं बल पर आधारित होता था।

❐ प्रमुख जनजाती विद्रोह

1) **रमोसी विद्रोह (1822-29 ई.)** – पश्चिमी घाट की रमोसी जनजाति अंग्रेजी प्रशासन से नाराज थी। उनके नेता सरदार चित्तर सिंह ने इस विद्रोह का नेतृत्व किया, किन्तु अंग्रेजी सेना द्वारा इसे दबा दिया गया।

2) **भील विद्रोह (1825-31 ई.)** – पश्चिमी घाट में सेवाराम भील के नेतृत्व में भीलों ने नवीन अंग्रेजी कानूनों के विरुद्ध विद्रोह किया। माना जाता है कि इस विद्रोह में भीलों को पेशवा बाजीराव द्वितीय का भी सहयोग प्राप्त हुआ था, किन्तु अंग्रेजी सेना द्वारा इस विद्रोह को भी कुचल दिया गया।

3) **कोल विद्रोह (1831-32 ई.)** – छोटा नागपुर की जनजाति कोल ने चावल की नशीली शराब पर लगाए गए उत्पादन शुल्क के विरोध में बुद्धो भगत व गंगा नारायण के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया, किन्तु ब्रिटिश सेना द्वारा इसे भी कुचल दिया गया।

4) **खासी विद्रोह (1833 ई.)** – अंग्रेजों ने जैयन्तिया पहाड़ी के आसपास के क्षेत्रों को जीतने के पश्चात् यहां नवीन मार्ग बनवाने के क्रम में खासी जनजाति को बेगारी करने हेतु बाध्य किया। इसके विरोध में तीरत सिंह के नेतृत्व में खासी जनजाति ने विद्रोह कर दिया, किन्तु सैन्य बल द्वारा इसे भी दबा दिया गया।

5) **संथाल विद्रोह (1855 ई.)** – बिहार के राजमहल जिले में अत्यधिक भूमि कर एवं पुलिस दमन के विरुद्ध संथालों ने सिंधू एवं कान्हू के नेतृत्व में विद्रोह किया, किन्तु 1856 ई. तक सिंधू एवं कान्हू की हत्या कर विद्रोह कुचल दिया गया।

6) **मुंडा विद्रोह (1899 ई. - 1900 ई.)** – बिहार के छोटा नागपुर पठार की मुंडा जनजाति ने सामूहिक खेती (खूंटकट्टी प्रथा) को प्रतिबंधित किए जाने के विरोध में बिरसा मुंडा के नेतृत्व में विद्रोह किया। बिरसा ने कहा कि कलयुग खत्म करके सतयुग लाएंगे, किन्तु 1900 ई. में बिरसा को गिरफ्तार कर लिया गया तथा शीघ्र ही बिरसा की हैजा से मृत्यु हो गई।

❐ असफलता के कारण

आदिवासियों के द्वारा किए गए विभिन्न विद्रोह प्राय: ब्रिटिश सरकार के द्वारा सैन्य शक्ति के बल पर कुचल दिए गए थे। वस्तुत: आदिवासी विद्रोहों की असफलता के पीछ निम्नलिखित प्रमुख कारण थे –

1) आदिवासियों के पास कोई स्पष्ट उद्देश्य नहीं था, अत: वे ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध एकजुट होकर संघर्ष नहीं कर सके।

2) आदिवासियों को योग्य नेतृत्व भी नहीं मिला। आदिवासियों के नेतृत्वकर्ता सिंधू, कान्हू, बिरसा आदि स्थानीय लोग ही थे, जबकि अंग्रेजों को प्रशिक्षित एवं योग्य अधिकारियों की सेवाएं प्राप्त हुईं।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

3) आदिवासियों के पास परम्परागत् हथियार, जैसे - तीर-कमान, कुल्हाड़ी, हंसिया आदि थे, जबकि ब्रिटिश सेना के पास आधुनिक हथियार थे।

❒ परिणाम/महत्व

यद्यपि ज्यादतर जनजातीय विद्रोहों को ब्रिटिश सेना द्वारा कुचल दिया गया था, किन्तु इन विद्रोहों के कुछ सकारात्मक परिणाम भी रहे, जैसे -

1) परम्परागत् एवं स्थानीय विद्रोहों की परम्परा स्थापित हुई।
2) जनजातियों में भी एकता और संगठनात्मक प्रवृति का विकास हुआ।
3) आगे भारत के स्वतंत्रता संग्रा में जनजातियों का भी विशेष सहयोग प्राप्त हुआ।
4) इतिहास लेखन में 'सबाल्र्टन' विचारधारा का विकास हुआ। परम्परागत् इतिहास लेखन में मुख्यत: किसी बड़ी घटना या बड़े व्यक्ति को केन्द्र में रखा जाता था। आधुनिक भारत का इतिहास भी मुख्यत: उपनिवेशवाद विरोधी, बड़ी राजनीतिक संस्थाओं एवं व्यक्तियों द्वारा किए गए आन्दोलन पर ही केन्द्रित है। किन्तु जनजातीय विद्रोहों के परिणामस्वरूप जिस सबाल्टर्न विचारधारा का विकास हुआ, उसके अन्तर्गत् निचले तबकों से संबंधित घटनाओं एवं विद्रोहों को भी इतिहास लेखन में शामिल किया जाने लगा।

1857 का विद्रोह

❒ कारण

1857 ई. का विद्रोह भारतीय इतिहास की युगांतकारी घटना है। यद्यपि इसका सबसे मुख्य कारण सैनिक असंतोष तथा चर्बी वाले कारतूसों को माना गया है, किन्तु इतना बड़ा विद्रोह केवल चर्बी वाले कारतूसों से नहीं उपजता। वास्तव में चर्बी वाले कारतूस और सैनिकों का विद्रोह तो केवल चिन्गारी मात्र थी, जिसने उन समस्त विस्फोटक पदार्थों को, जो राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सैन्य कारणों से एकत्रित हुए थे, उनमें आग लगा दी और दावानल का रूप धारण कर लिया।

- **दीर्घकालिक कारण**
  - **राजनीतिक कारण**

1) **व्यपगत सिद्धान्त** - लॉर्ड डलहौजी के द्वारा लागू इस सिद्धान्त के द्वारा देशी राजाओं को अपने उत्तराधिकारी के रूप में गोद लेने का अधिकार समाप्त कर दिया गया तथा सतारा, जैतपुर, संभलपुर, बघाट, उदयपुर, झांसी, नागपुर आदि राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया था। अत: देशी राजाओं में अंग्रेजों के प्रति आक्रोश था।
2) **पेंशनों एवं उपाधियों का अन्त** - लॉर्ड डलहौजी ने पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नाना साहेब की पेंशन बंद कर दी तथा कर्नाटक, तन्जौर एवं सूरत के राजाओं की उपाधियों का अन्त कर दिया। उसी प्रकार डलहौजी मुगल बादशाह को भी लाल किले से हटने, बादशाह की उपाधि छोड़ने तथा अपना उत्तराधिकारी नामजद करने का अधिकार छोड़ने को कहा। डलहौजी की उपर्युक्त नीतियों के विरुद्ध शासकों के साथ-साथ जनता में भी आक्रोश था।
3) **अवध का विलय** - अवध के अंतिम नवाब वाजिद अलीशाह का वैध उत्तराधिकारी था। व्यपगत सिद्धान्त के अनुसार अवध का विलय नहीं किया जा सकता था। अत: डलहौजी ने कुशासन के आधार पर 1856 ई. में अवध को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया। इससे आक्रोशित होकर अवध के ताल्लुकदार विद्रोह हेतु अवसर की तलाश में थे।
4) **ईनाम कमीशन** - 1857 ई. में डलहौजी ने जमींदारों एवं जागीरदारों की जांच के लिए ईनाम कमीशन बैठाया तथा जांच के बाद 20,000 जागीरें जब्त कर ली गईं। डलहौजी के इस कार्य के विरुद्ध भी जमींदारों में असंतोष था।
5) **प्रशासनिक में विभेद** - ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत नए फौजदारी एवं दीवानी कानून लागू किए गए, न्यायालयों में फारसी के बदले अंग्रेजी को अपनाया गया तथा भारतीय प्रशासनिक अधिकारियों के साथ भेदभाव किया गया, परिणामस्वरूप जनता एवं ब्रिटिश सेवाओं में नियुक्त भारतीयों में असंतोष था।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❖ **आर्थिक कारण**

1) **ब्रिटिश भू-राजस्व नीति** - ब्रिटिश भू-राजस्व नीति के अन्तर्गत कृषकों के शोषण को प्रोत्साहन दिया गया। कृषक ऋणग्रस्तता, भुखमरी, गरीबी एवं दासता के शिकार हुए। साथ ही भू-राजस्व नीति का लाभ परम्परागत् जमींदारों को भी प्राप्त नहीं हुआ था। अत: कृषि से जुड़े विभिन्न वर्गों में अंग्रेजों के खिलाफ असंतोष था।

2) **ब्रिटिश औद्योगिक नीति** - ब्रिटिश औद्योगिक नीति के अन्तर्गत भारत में हस्तशिल्प उद्योगों का पतन हो गया। अत: इन उद्योगों से जुड़े दस्तकारों, बुनकरों, शिल्पियों आदि वर्गों में भी असंतोष था। उसी प्रकार भेदमूलक आयात एवं निर्यात नीति के कारण भारतीय व्यापारियों में भी अंग्रेजी शासन के विरोध आक्रोश था।

❖ **सामाजिक कारण**

1) **सती प्रथा का अंत** - 1829 ई. में हिन्दू समाज में प्रचलित सती प्रथा को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया। भारत की रूढ़िवादी जनता में इसके प्रति आक्रोश था।

2) **विधवा विवाह को प्रोत्साहन** - 1856 ई. में हिन्दू पुनर्विवाह अधिनियम पारित कर विधवा विवाह को वैध बना दिया गया था। अंग्रेजों के इस कार्य के विरुद्ध भी परम्परागत् जनता में असंतोष था।

3) **नस्ल के आधार पर भेदभाव** - ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा भारतीयों को अयोग्य, अक्षम एवं निम्न दर्जे का माना जाता था। इस प्रकार के नस्लीय भेदभाव ने भी जनता में असंतोष को जन्म दिया।

❖ **धार्मिक कारण**

1) **ईसाई मिशनरी द्वारा धर्मांतरण** - ईसाई मिशनरियों द्वारा भारतीय जनता को जबरन ईसाई धर्म में धर्मांतरित किया जा रहा था तथा ऐसे धर्मांतरण को अंग्रेजी सरकार का भी समर्थन प्राप्त था, इस कारण जनता में असंतोष था।

2) **धार्मिक अयोग्यता अधिनियम** - 1850 ई. में पास किए गए धार्मिक अयोग्यता अधिनियम द्वारा यह कानून बना दिया गया कि धार्मिक परिवर्तन से पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति से वंचित नहीं होगा। इस प्रकार के कानूनों से अंग्रेजों ने धर्मांतरण को प्रोत्साहन दिया विरोधस्वरूप जनता में आक्रोश था।

3) **भारतीय धर्म की आलोचना** - अंग्रेजों द्वारा भारतीय धर्म में प्रचलित प्रथाओं व परम्पराओं की हंसी उड़ाई जाती थी तथा भारतीय धर्म की आलोचना की जाती थी। इस कारण भी धार्मिक वर्ग में असंतोष था।

❖ **सैनिक कारण**

1) **भेदभावपूर्ण व्यवहार** - भारतीय सिपाहियों के साथ वेतन तथा पदोन्नति में भेदभाव किया जाता था। सेना में सूबेदार से ऊपर के पदों में भारतीयों को नियुक्त नहीं किया जाता था। सेना में भारतीय सैनिकों एवं यूरोपीय सैनिकों का अनुपात 6:1 था, जबकि सेना के कुल खर्चे का आधे से अधिक भाग यूरोपीय सैनिकों पर खर्च किया जाता था। उसी प्रकार वेतनवृद्धि एवं पदोन्नति पर यूरोपियों का एकाधिकार था।

2) **धार्मिक मान्यताओं की मनाही** - हिन्दूओं को तिलक लगाने, मुस्लिमों को दाढ़ी रखने तथा सिक्खों को पगड़ी पहनने से मना किया जाता था।

3) **डाकघर अधिनियम** - 1854 ई. में पारित डाकघर अधिनियम के द्वारा सैनिकों की नि:शुल्क डाक सुविधा को समाप्त कर दिया गया।

4) **सामान्य सेना भर्ती अधिनियम** - 1856 ई. में पारित इस अधिनियम के अनुसार सैनिकों को यह स्वीकार करना होता था कि सरकार को जहां भी आवश्यकता होगी, वे वहां कार्य करेंगे। अत: अब वे समुद्र पार जाने से मना नहीं कर सकते थे।

◆ **तत्कालिक कारण**

1856 ई. में सरकार ने पुरानी बन्दूक ब्राउन बैस के स्थान पर न्यू इन्फील्ड रायफल का प्रयोग करना शुरू किया। इस रायफल में कारतूस के ऊपरी भाग को मुंह से काटना पड़ता था। जनवरी, 1857 ई. में बंगाल सेना में यह अफवाह फैल गई कि कारतूस में गाय व सूअर की चर्बी लगी है। कालांतर में हुई जांच में भी यह सिद्ध हो गया। अत: सैनिकों को विश्वास हो गया कि चर्बी वाले कारतूस का प्रयोग उनका धर्म भ्रष्ट करने का निश्चित प्रयत्न है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ विद्रोह का प्रारंभ व प्रसार

1) **बहरामपुर** – 26 फरवरी, 1857 ई. को बहरामपुर के सैनिकों ने चर्बी वाले कारतूस का प्रयोग करने से मना कर दिया। किन्तु उन पर अनुशासनहीनता का आरोप लगाकर इस सैन्य टुकड़ी को भंग कर दिया गया।

2) **बैरकपुर** – 29 मार्च, 1857 ई. को 34वीं रेजीमेंट बैरकपुर के मंगल पाण्डे ने चर्बी वाले कारतूस के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तथा एडजुरेण्ट लेफ्टिनेट बाग एवं मेजर सार्जेण्ट ह्यूरसन की हत्या कर दी। किन्तु शीघ्र ही इस विद्रोह को भी कुचल दिया गया तथा 8 अप्रैल को मंगल पाण्डे को फांसी पर लटका दिया गया।

3) **मेरठ** – 24 अप्रैल, 1857 ई. को मेरठ के सिपाहियों ने भी चर्बी वाले कारतूस का इस्तेमाल करने से इनकार कर दिया। 9 मई, 1857 ई. को उनमें से 85 को बर्खास्त कर 10 वर्ष की सजा सुनाई गई।

4) **दिल्ली** – मेरठ के विद्रोही 11 मई को दिल्ली पहुंचे, उन्होंने 12 मई, 1857 ई. को दिल्ली पर अधिकार कर लिया। इस दौरान दिल्ली शस्त्रागार का प्रमुख लेफ्टिनेन्ट विलोबी ने विरोध किया, परन्तु पराजित हो गया। विद्रोहियों ने बहादुरशाह द्वितीय को भारत का सम्राट घोषित किया। साथ ही सरकारी काम-काज चलाने, सभी फौजी व गैर फौजी मामलों का फैसला करने के लिए एक परिषद् का भी गठन किया। इसमें सेना तथा नागरिक प्रशासन के प्रतिनिधि थे। इसका नेतृत्व बख्त खां कर रहे थे। किन्तु 20 सितम्बर, 1857 ई. को दिल्ली पर अंग्रेजों का पुनः अधिकार हो गया, परन्तु इस संघर्ष में जॉन निकोलसन मारा गया। बहादुरशाह को निर्वासित कर रंगून भेज दिया गया, जहां 1862 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।

4) **लखनऊ एवं अवध** – यहां 4 जून, 1857 ई. को बेगम हजरत महल के नेतृत्व में विद्रोह हुआ। वाजिद अलीशाह की बेगम हजरत महल ने अपने अल्पवयस्क पुत्र विरजिस कादर को नवाब घोषित कर दिया। इनके प्रमुख सहयोगी मौलवी अहमदुल्ला थे। किन्तु मार्च, 1858 में कैम्पवेल ने यहां के विद्रोह को समाप्त कर लखनऊ पर पुनः कब्जा कर लिया।

5) **कानपुर** – यहां 5 जून, 1857 ई. को अंतिम पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नानासाहब के नेतृत्व में विद्रोह हुआ। उनके प्रमुख सहयोगी तात्या टोपे थे। किन्तु दिसम्बर, 1857 ई. तक हेवलाक व कैम्पवेल ने कानपुर पर पुनः कब्जा कर लिया।

6) **झांसी एवं ग्वालियर** – यहां गंगाधर राव की विधवा रानी लक्ष्मीबाई अपने दत्तक पुत्र दामोदर राव को झांसी की गद्दी न दिए जाने से अंग्रेजों से नाराज थी, इसलिए उसने 5 जून, 1857 ई. को विद्रोह कर दिया। रानी का दमन करने के लिए 23 मार्च, 1858 ई. को ह्यूरोज ने झांसी को घेर लिया। रानी शत्रु सेना के मध्य से निकलकर कालपी पहुंची, फिर कालपी से भागकर रानी ग्वालियर पहुंची। ग्वालियर में सिंधिया की सेना भी रानी लक्ष्मीबाई के साथ मिल गई, जिसकी सहायता से रानी ने ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। अन्ततः 18 जून, 1858 ई. में ह्यूरोज से लड़ते हुए रानी लक्ष्मीबाई वीरगति को प्राप्त हुई। इस तरह झांसी एवं ग्वालियर पर अंग्रेजों का पुनः अधिकार हो गया।

विद्रोह के अन्य प्रमुख केन्द्र –

बरेली	– खान बहादुर खान।	आरा	– कुंवर सिंह।
मंदसौर	– फिरोजशाह।	संबलपुर	– सुरेन्द्र भाई।
इलाहाबाद	– लियाकत अली।		

Shaping Your Dreams

❐ विद्रोह के असफलता के कारण

1) **निश्चित उद्देश्य का अभाव** – 1857 ई. के विद्रोह में यह कहना कठिन है कि सभी विद्रोही राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर लड़ रहे थे। भारतीय सैनिकों ने चर्बी वाले कारतूस के कारण विद्रोह किया था, जिन्हें अपने लक्ष्य का पता नहीं था। उसी प्रकार नानासाहब पेंशन एवं हजरत महल व झांसी की रानी अपने द्वारा नियुक्त उत्तराधिकारियों के पक्ष में लड़ रहे थे।

2) **संगठन का अभाव** – इस विद्रोह में शामिल सैनिकों के पास मजबूत केन्द्रीय संगठन का भी अभाव था। विद्रोह बिना किसी पूर्व निश्चित योजना के ही प्रारंभ हो गया था। पहले विद्रोह की तिथि 31 मई, 1857 ई. निश्चित की गई थी, किन्तु विद्रोह 10 मई को ही हो गया।

3) **योग्य नेतृत्व का अभाव** – विद्रोहियों में वीरता एवं बहादुरी की भावना थी, किन्तु उनके पास योग्य नेतृत्व का अभाव था। बहादुरशाह जफर ने नेतृत्व संभाल साहस तो प्रदर्शित किया, किन्तु योग्यता नहीं।

4) **जनसमर्थन का अभाव** – 1857 ई. के विद्रोह में शिक्षित भारतीयों, कृषकों एवं जनजातियों का पूर्ण सहयोग प्राप्त नहीं हुआ।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

5) **विद्रोह का सीमित स्वरूप** – 1857 का विद्रोह भारत के कुछ ही भागों तक सीमित रहा। पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब, कश्मीर, उड़ीसा एवं दक्षिण भारत में इस विद्रोह का विस्तार नहीं हो सका। अत: सीमित स्वरूप के कारण यह असफल रहा।

6) **देशी नरेशों एवं सामन्तों की गद्दारी** – पंजाब के सिक्ख सरदार, कश्मीर के गुलाब सिंह, ग्वालियर के सिंधिया और मंत्री दिनकर राव, हैदरबाद के सालारजंग, भोपाल की बेगम और नेपाल के मंत्री जंगबहादूर की स्वामी भक्ति अंग्रेजों के साथ थी।

7) **दिल्ली का स्ट्रेटेजिक महत्व न समझना** – दिल्ली शक्ति की रीढ़ और भारत पर शासन का केन्द्र थी। अंग्रेज इसे समझते थे। फलत: अंग्रेजों ने सर्वप्रथम दिल्ली में अपनी ट्रूप भेजकर दिल्ली को घेरा व उस पर अधिकार किया।

8) **सैन्य दृष्टिकोण** – अंग्रेजों की तुलना में विद्रोहियों के साधन सीमित थे। भारतीय सैनिकों के पास जहां काफी कम बंदूकें थीं और प्राय: वे तलवारों व भालों से लड़े, वहीं अंग्रेजी सेना आधुनिकतम हथियारों जैसे – एनफिल्ड राइफल इत्यादि से लैस थी। **नाना साहिब** ने तो कहा था कि 'यह नीली टोपी वाली राइफल तो गोली चलने से पहले ही मार देती है।' उसी प्रकार रेलवे एवं विद्युत तार व्यवस्था के माध्यम से ब्रिटिश सेनापति न केवल विद्रोहियों की गतिविधियों से अवगत रहे, बल्कि त्वरित गति से विद्रोह को कुचलने में भी सफल रहे।

9) **आधारभूत सामरिकी का प्रयोग नहीं करना** – विद्रोहियों ने ब्रिटिश लाइन के Vital केन्द्रों – मिलिट्री केन्द्रों, पुलों तथा संचार साधनों को नष्ट करने जैसी आधारभूत सामरिक कार्यवाहियों का संचालन नहीं किया।

10) **कमाण्ड की एकता का अभाव** – क्रांतिकारियों के नेतृत्वकर्ता स्वयं में वीर जरूर थे, किन्तु वे किसी एक केन्द्रीकृत कमाण्ड के तले नहीं लड़े। 1857 ई. तक भारत मध्ययुगीन अवस्था में ही जी रहा था। युद्ध के सिद्धान्तों में एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त कमाण्ड की एकता भी होती है।

11) **अंग्रेजों के अनुकूल परिस्थितियां एवं कुशल नेतृत्व** – 1857 ई. के विद्रोह के समय परिस्थितियां अंग्रेजों के अनुकूल थीं। क्रीमिया तथा चीन की लड़ाइयों का अंत हो चुका था। साथ ही अंग्रेजी सरकार को नील, आऊट्रम, लारेन्स, हेवलाक, ह्यूरोज, निकोलसन, कैम्पवेल जैसे सेनापतियों की सेवाएं प्राप्त हुईं, जिन्हें कई युद्धों का अनुभव था। विद्रोहियों को चाहिए था कि वे अंग्रेजों को ऐसा करने से रोकते। विद्वानों का मानना है कि दिल्ली के बाद क्रांतिकारियों को कलकत्ता की ओर कूच करना चाहिए था, परन्तु उन्होंने ऐसा कोई प्रयास नहीं किया।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि भारतीय सैनिकों के पास किसी निश्चित एवं सशक्त उद्देश्य, संगठन, नेतृत्व, कोष, सैन्य योजना आदि का अभाव था, जबकि ब्रिटिश सेना को बेहतर नेतृत्व, संचार-व्यवस्था एवं सैन्य सामग्री प्राप्त हुई। साथ ही इस विद्रोह का क्षेत्र भी सीमित था, भारत की बहुत बड़ी जनता ने इस विद्रोह में भाग नहीं लिया था तथा बहुत से देशी राजाओं ने ब्रिटिश सेना का ही साथ दिया था। अत: अंग्रेजों के लिए इस विद्रोह को कुचलना आसान हो गया।

❐ विद्रोह का स्वरूप

1857 ई. के विद्रोह का स्वरूप निर्धारण आधुनिक भारत के इतिहास लेखन की प्रमुख समस्या रही है। इसका कारण है कि इसके अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री का अभाव। वस्तुत: बहुत से विद्रोहियों ने पकड़े जाने के भय से कागजातों को पहले ही नष्ट कर दिया। जो थोड़ी-बहुत सामग्री प्राप्त हुई, उसमें भी पर्याप्त संगति नहीं है।

ब्रिटिश इतिहासकारों में लॉरेन्स, सीले व होम्ज ने इसे सैनिक विद्रोह की संज्ञा दी है। वहीं आऊट्रम व टेलर इसे हिन्दू-मुस्लिम षड्यंत्र का परिणाम मानते हैं, जबकि होम्ज ने इसे बर्बरता व सभ्यता के बीच युद्ध तथा रीज ने इसे धर्मान्धों का ईसाइयों के विरुद्ध युद्ध कहा है। वास्तव में इन लेखकों का उद्देश्य यह सिद्ध करना था कि इस विद्रोह का मुख्य कारण ब्रिटिश सरकार की दोषपूर्ण नीतियां नहीं, बल्कि सैन्य संगठन में निहित कतिपय दोष थे, जिन्हें दूर करने से विद्रोह की संभावना को समाप्त किया जा सकता था। चूंकि यह केवल सैनिकों के द्वारा किया गया विद्रोह था तथा इसमें जनसाधारण का कोई योगदान नहीं था, अत: इसे आसानी से कुचला जा सका।

इसके विपरीत वी. डी. सावरकर ने इसे सुनियोजित 'स्वतंत्रता संग्राम', जबकि बेन्जामिक डिजरेली व अशोक मेहता ने इसे राष्ट्रीय विद्रोह माना है। परन्तु इस मत को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि 1857 के विद्रोह का विस्तार बंगाल, पंजाब, दक्षिण भारत आदि क्षेत्रों में नहीं था और न ही विद्रोह के नेता राष्ट्रीय नेता थे। बहादुरशाह कोई राष्ट्रीय सम्राट नहीं था, उसे सैनिकों ने अपना नेता बनने पर विवश किया था। नानासाहेब ने उस समय झंडा उठाया, जब उनका दूत लंदन से उनके लिए पेंशन प्राप्त करने में असफल रहा।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

झांसी का झगड़ा उत्तराधिकार और विलय के प्रश्न पर हुआ। इसमें संदेह नहीं कि रानी वीरगति को प्राप्त हुई, परन्तु उसने यह स्पष्ट नहीं किया कि वह राष्ट्रहित के लिए लड़ रही थी। अवध का नवाब, जो एक बेकार-सा व्यभिचारी व्यक्ति था, राष्ट्रीय नेता का रूप कभी नहीं ले सकता था। अवध के ताल्लुकदारों ने सामन्तशाही अधिकारों के लिए अथवा अपने राजा के लिए युद्ध किया, राष्ट्रीय हित के लिए नहीं। इन नेताओं में अधिकांश आपस में भी ईर्ष्या व द्वेष करते थे और लगातार एक-दूसरे के विरुद्ध षड्यंत्र रच रहे थे। जनसाधारण भी इनसे अधिक प्रभावित नहीं था, बल्कि ज्यादातर जनता तटस्थ एवं उदासीन रही।

अत: इसे राष्ट्रीय या स्वतंत्रता संग्राम की संज्ञा भी नहीं दी जा सकती है और न ही यह सुनियोजित था, क्योंकि विद्रोहियों के पास ब्रिटिश राज को विस्थापित करने के पश्चात् का कोई स्पष्ट कार्यक्रम भी नहीं था। वस्तुत: 1857 के विद्रोह ने भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न रूप धारण किया। यह सत्य है कि विद्रोह का प्रारंभ सैनिक विद्रोह से ही हुआ, जिसमें कालांतर में कुछ अन्य वर्गों के असंतुष्ट व्यक्ति भी सम्मिलित हो गए थे।

इसका वास्तविक स्वरूप कुछ भी क्यों न हो। शीघ्र ही यह भारत में अंग्रेजी सत्ता के लिए एक चुनौती का प्रतीक बन गया। अंग्रेजी दासता से स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए लड़ते हुए जन्म ले रहे भारतीय राष्ट्रवाद के लिए, यह एक चमकता हुआ उदाहरण था। इसे अंग्रेजों के विरुद्ध राष्ट्रीय स्वतंत्रता युद्ध का पूर्ण यश प्राप्त हुआ।

❒ महत्व

1857 ई. के विद्रोह ने भारतीयों को यह दिखा दिया कि सिर्फ सेना और शक्ति के बल पर ही अंग्रेजों से मुक्ति नहीं मिल सकती, बल्कि सभी वर्गों का सहयोग, समर्थन और राष्ट्रीय भावना आवश्यक है। 1857 ई. के विद्रोह से भारतीयों में राष्ट्रीय बीजारोपण हुआ। इस विद्रोह ने उन्हें एकता तथा संगठन का पाठ पढ़ाया और राष्ट्रीय जीवन में यह उनकी प्रेरणा का स्रोत बना। विद्रोह के पश्चात् ब्रिटिश सरकार का ध्यान देश की आंतरिक दशा को सुधारने की ओर उन्मुख हुआ। भारतीय इतिहास में यहीं से संवैधानिक विकास का सूत्रपात हुआ और धीरे-धीरे भारतीयों को अपने देश के शासन में भाग लेने का अवसर दिया जाने लगा। इस तरह भारत में प्रजांतात्रिक शासन का बीजारोपण हुआ।

❒ परिणाम

यद्यपि 1857 ई. का विद्रोह असफल रहा, लेकिन इसका तात्कालिक और दूरगामी परिणाम अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस विद्रोह के बाद मुगल साम्राज्य सदा-सदा के लिए समाप्त हो गया। इस विद्रोह का अन्य परिणाम था विक्टोरिया का घोषणा पत्र। लॉर्ड कैनिंग ने 1 नवम्बर, 1858 ई. को इलाहबाद में अपना दरबार लगाकर महारानी विक्टोरिया का घोषणा पत्र पढ़ा। इस पत्र के अनुसार -

1) भारतीय शासन की बागडोर कंपनी के हाथों से निकलकर क्राऊन के हाथों में चली गई। गवर्नर जनरल को अब वायसराय कहा जाने लगा।
2) इस घोषणा के द्वारा अब सरकार भारतीय मामलों के लिए सीधे उत्तरदायी हो गई।
3) सरकार ने डलहौजी की हड़प्पने की नीति त्याग दी और भारतीय नरेशों को गोद लेने का अधिकार दे दिया। साथ ही यह स्पष्ट कर दिया गया कि भविष्य में कोई भी राज्य अंग्रेजी राज्य में नहीं मिलाय जाएगा।
4) भारतीय रजवाड़ों के साथ यथास्थिति बनाए रखने की बात कही गई।
5) घोषणा-पत्र में कहा गया कि सरकार अब भारतीयों के धार्मिक एवं सामाजिक मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी।
6) भारत का प्रशासन चलाने हेतु लंदन में भारत सचिव के पद का सृजन किया गया तथा उसकी सहायता के लिए 15 सदस्यों का एक परिषद् बनाई गई, जिसमें 8 की नियुक्ति सरकार द्वारा एवं 7 की कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स द्वारा होनी थी।
7) इस विद्रोह के लिए मुख्यत: भारतीय सेना ही उत्तरदायी थी। अत: सेना के संबंध में भी कई प्रावधान किए गए, जैसे -
   - **a)** बंगाल प्रेजिडेन्सी में यूरोपीय और भारतीय सैनिकों का अनुपात 1:2, तथा मद्रास व बम्बई प्रेजिडेन्सियों में 2:5 निश्चित कर दिया गया।
   - **b)** सेना और तोपखाने में ऊँचे पद केवल यूरोपीयों के लिए ही आरक्षित कर दिए गए।
   - **c)** विद्रोह के पहले सेना में बंगाल एवं अवध के सैनिक सर्वाधिक होते थे, परन्तु विद्रोह के पश्चात् उनकी संख्या घटा दी गई और उनकी जगह पंजाब एवं गोरखों की सैनिकों की संख्या में बढोत्तरी की गई।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

भारतीय राष्ट्रवाद

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में राष्ट्रीय चेतना बहुत तेजी से विकसित हुई। इस राष्ट्रीय चेतना से उपजे राष्ट्रीय आन्दोलन से ही अन्ततः भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। भारतीय राष्ट्रवाद के उद्भव में कई कारणों का योगदान था।

❐ भारतीय राष्ट्रवाद के उद्भव के कारण

1) **राजनीतिक एकीकरण** - भारत में ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत एकसमान प्रशासनिक एवं न्यायिक कानूनों को लागू किया गया, जिससे भारत का राजनीतिक एकीकरण हुआ। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीयता के उदय में सहायता मिली।

2) **भेदभावपूर्ण नीति** - अंग्रेजों द्वारा भारतीयों के साथ प्रशासनिक, न्यायिक व सैनिक नौकरियों में अपनाई जाने वाली भेदभावपूर्ण नीति भी राष्ट्रीयता के उदय में सहायक हुई।

3) **नस्लीय विभेद की नीति** - अंग्रेजों अपनेआप को श्रेष्ठ समझते थे, जबकि भारतीयों को अपमान एवं घृणा की दृष्टि से देखते थे। प्रशासन, न्यायालय तथा सेना में भी नस्लीय भेदभाव किया जाता है। इस विभेद की नीति से भी भारतीयों में एकता तथा राष्ट्रीयता का विकास हुआ।

4) **आर्थिक शोषण** - ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति से भारत में भुखमरी, अकाल, शिल्प उद्योगों का पतन, धन निष्कासन जैसी आर्थिक समस्याओं का जन्म हुआ। ब्रिटिश आर्थिक शोषण के कारण कृषक, जमींदार, मजदूर, पूंजीपति, बुद्धिजीवी आदि वर्गों में तीव्र असंतोष था। इस आर्थिक असंतोष की वजह से ही मुख्यतः राष्ट्रवाद का उद्भव हुआ।

5) **सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलन** - राष्ट्रीय चेतना की उत्पत्ति में सामाजिक-धार्मिक आन्दोलनों का विशेष महत्व है। राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द आदि ने भारतीय धर्म एवं संस्कृति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया तथा आम जनता को यह बताया कि हमें पश्चिमी सभ्यता व संस्कृति का अंधानुकरण नहीं करना चाहिए। इन सुधारकों ने लोगों में आत्म-सम्मान एवं राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना विकसित की, परिणामस्वरूप भारतीयों में राष्ट्रीयता का विकास हुआ।

6) **आधुनिक शिक्षा** - यद्यपि अंग्रेजों ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार स्वार्थवश किया था, किन्तु 19वीं शताब्दी में अंग्रेजी शिक्षा व पाश्चात् विचारधारा ने भारतीयों को तर्कसंगत एवं विवेकपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान किया। आधुनिक शिक्षा प्राप्त भारतीयों ने जब बर्क, जेम्स मिल, रूसो, वाल्टेयर आदि के विचारों को पढ़ा, तब उनमें स्वतंत्रता, स्व-शासन तथा राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ।

7) **प्रेस एवं साहित्य** - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने नाटक 'भारत दुर्दशा' में भारत की दुर्दशा हेतु ब्रिटिश सरकार की नीतियों को उत्तरदायी माना। उसी प्रकार प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी, बंकिमचन्द्र चटर्जी आदि की रचनाओं ने भी देश-प्रेम भावना का प्रचार-प्रसार किया।

8) **आधुनिक समाचार पत्र** - आधुनिक समचार पत्रों, जैसे - राजा राममोहन राय द्वारा लिखित संवाद कौमुदी व मिरात-उल-अखबार, ईश्वरचंद्र विद्यासागर द्वारा लिखित सोमप्रकाश, मोतीलाल घोष द्वारा लिखित अमृत बाजार पत्रिका, बाल गंगाधर द्वारा लिखित मराठा व केसरी आदि ने ब्रिटिश नीतियों की आलोचना कर भारतीयों में राष्ट्रवाद की भावना जगाई।

9) **परिवहन तथा संचार के साधन** - रेल, डाक, तार आदि साधनों के विकास ने भी भारत में राष्ट्रीयता की जड़ों को मजबूत किया। इनके आगमन से भौगोलिक दूरी कम हुई तथा जनता में निकटता आई, जिससे राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ।

10) **लॉर्ड लिटन की नीति** - लॉर्ड के प्रतिक्रियावादी कार्यों, जैसे - अकाल के समय दिल्ली दरबार का आयोजन, वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट द्वारा प्रेस पर प्रतिबंध, आर्म्स एक्ट द्वारा अस्त्र-शस्त्र रखने की मनाही, आई. सी. एस. परीक्षा की आयु 21 वर्ष से घटाकर 19 वर्ष करना, द्वितीय आंग्ल-अफगान युद्ध का खर्च भारत पर थोपना आदि ने भी राष्ट्रीयता की भावना जगाई।

11) **इल्बर्ट बिल विवाद** - वायसराय रिबन के समय पारित इल्बर्ट बिल में जनपद सेवा के भारतीय जिला व सत्र न्यायाधीशों को भी यूरोपिय न्यायाधीशों के बराबर शक्तियां प्रदान कर दी गई थीं, किन्तु यूरोपीय लोगों की प्रतिक्रियास्वरूप इस बिल को रद्द करना पड़ा। इससे भारतीय यह समझ गए कि जहां यूरोपीय लोगों के विशेषाधिकार का प्रश्न होगा, वहां उन्हें न्याय नहीं मिल सका। इस घटना ने भी राष्ट्रवाद के विकास में योगदान दिया।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

12) **बंगाल विभाजन** – वायसराय कर्जन के समय 1905 ई. में किए गए बंगाल विभाजन के विरोध स्वरूप भी भारतीयों में राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ।

13) **राजनीतिक संस्थाओं का योगदान** – लैण्ड होल्डर सोसायटी (1838 ई.), इंडियन एसोसिएशन (1876 ई.), बंबई प्रेसिडेंसी एसोसिएशन (1885 ई.), मद्रास महाजन सभा (1884 ई.) आदि राजनीतिक संगठनों ने भी ब्रिटिश नीतियों का विरोध कर भारतीयों में राष्ट्रीय भावना के विकास में योगदान दिया।

इस प्रकार उपर्युक्त समस्त कारणों से भारतीयों में राष्ट्रवाद का विकास हुआ। इस राष्ट्रवाद की सर्वोच्च अभिव्यक्ति कांग्रेस की स्थापना एवं राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम आन्दोलन के रूप में हुई। आगे कांग्रेस के नेतृत्व में चलाए गए राष्ट्रीय आन्दोलन के परिणामस्वरूप ही भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

उदारवादी चरण : 1885 ई. -1905 ई.

1985 ई. में स्थापना से अगले 20 वर्षों तक कांग्रेस की राजनीति को मोटे तौर पर नरमपंथी (Moderates) कहा जाता है। कांग्रेस के इस दौर के प्रमुख उदारवादी नेता दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, राणाडे, गोपालकृष्ण गोखले, सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी आदि थे। कांग्रेस के ये नेता अधिकतर अंशकालिक राजनीतिज्ञ तथा निजी जीवन में सफल व पेशेवर थे।

❐ उद्देश्य

उदारवादियों का प्रमुख उद्देश्य ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही स्वराज की मांग थी।

❐ विचारधारा

उदारवादी अंग्रेजों की न्यायप्रियता, क्रमिक सुधार, शांतिपूर्ण एवं रक्तहीन संघर्ष में विश्वास करते थे। फलतः उन्होंने विरोध हेतु संवैधानिक तरीके को अपनाया। उन्हें ब्रिटिश संसद पर पूर्ण विश्वास था, उनकी शिकायत केवल भारत में वायसराय व उसकी काउंसिल के अ-ब्रिटिश कानूनों के खिलाफ थी। उन्हें राजनीतिक आन्दोलन में भारतीय जनता की क्षमता पर विश्वास नहीं था।

❐ कार्य-पद्धति

उदारवादियों ने प्रार्थना-पत्रों, प्रतिवेदनों, स्मृरण-पत्रों, शिष्टमण्डलों, सभाओं तथा भाषणों द्वारा अपनी मांगों को ब्रिटिश जनमत तक पहुंचाने का माध्यम बनाया।

❐ मांगें

- **संवैधानिक**

1) विधायिकाओं में भारतीयों की भागीदारी में वृद्धि की जाए।

2) वायसराय की कार्यकारी काउंसिल में 2 भारतीय सदस्यों की नियुक्ति की जाए।

3) ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन स्व-शासन का अधिकार दिया जाए।

- **प्रशासनिक**

1) सिविल सेवा का भारतीयकरण किया जाए। I. C. S. की परीक्षा का इंग्लैंड एवं भारत में एक साथ आयोजन किया जाए तथा इनमें सम्मिलित होने हेतु आयु सीमा बढ़ाई जाए।

2) न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक किया जाए।

3) शस्त्र अधिनियम (Arms Act) को समाप्त कर भारतीय जनता को अपनी रक्षा हेतु शस्त्र रखे जाने की अनुमति दी जाए।

4) नागरिक अधिकारों की रक्षा की जाए।

- **आर्थिक**

1) भू-राजस्व की दर कम की जाए।

2) स्थायी बंदोबस्त को देश के अन्य भागों में भी लागू किया जाए।

3) भारतीय उद्योगों की सुरक्षा हेतु तटकर लगाया जाए।

4) सैन्य व्यय में कटौती की जाए।

5) धन निकासी को रोका जाए।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ सीमाएं

1) उदारवादियों ने ब्रिटिश सरकार के वास्तविक स्वरूप को समझने में असफल रहे।
2) उन्होंने अपने आंदोलन को शिक्षित मध्य वर्ग तक सीमित रखा, वे आम जनता की ताकत को समझने में असफल रहे।
3) उन्होंने जमींदारों के हित में स्थायी बंदोबस्त के विस्तार की मांग तो की, किन्तु कृषकों की सुरक्षा हेतु कास्तकारी कानूनों की नहीं। यही कारण था कि उदारवादी कृषकों के बीच मजबूत आधार का निर्माण नहीं कर सके।
4) उदारवादियों में कुछ पूंजीपति वर्ग के लोग भी थे, जिन्होंने कांग्रेस को मजदूर समर्थक रूख अपनाने से रोका। इन्होंने फैक्ट्री सुधारों का विरोध किया।

❐ उपलब्धियां

1) उदारवादियों ने प्रारंभिक चरण में जनता को राष्ट्रीय आन्दोलन से परिचित कराया।
2) ब्रिटिश शासन के शोषणकारी स्वरूप को प्रकाश में लाया। उन्होंने धन के निष्कासन का सिद्धान्त प्रस्तुत कर आर्थिक राष्ट्रवाद को जन्म दिया। आगे के राष्ट्रवादी आंदोलन में धन निकासी का सिद्धान्त एक प्रमुख मुद्दा बना रहा।
3) इन्हीं के प्रयासों से 1892 ई. में Indian Council Act पारित हुआ।
4) 1893 ई. में हाउस ऑफ कॉमन्स में भारत एवं लंदन दोनों जगह I. C. S. की परीक्षा आयोजित किए जाने संबंधी विधेयक पारित किया गया।
5) भारतीय व्यय की जांच के लिए Welby Commission की नियुक्ति की गई।
6) उदारवादियों ने ही आगे के राष्ट्रीय आंदोलन हेतु एक ठोस आधार तैयार किया।

❐ नरमी क्यों?

इसका उत्तर प्रारंभिक कांग्रेसी नेताओं की सामाजिक संरचना में निहित था। उदारवादी अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति थे। फलतः उन्होंने अंग्रेजी शासन को नहीं, बल्कि उस शासन को दोषपूर्ण माना, जो अ- ब्रिटिश था। साथ ही उदारवादी यह समझते थे कि भारत अभी राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में पहुंचा है, अर्थात् - एक नवोदित राष्ट्र है और भारत के इस राष्ट्रीय स्वरूप को बहुत सावधानी से निखारने की जरूरत थी। आरंभिक राष्ट्रवादियों ने अपनी राजनीतिक तथा आर्थिक मांगों का निर्धारण इस बात को ध्यान में रखकर किया कि भारतीय जनता को एक साझे राजनीकि-आर्थिक कार्यक्रमों के आधार पर संगठित करने की आवश्यकता है। यही कारण था कि उन्होंने कोई सामाजिक या धार्मिक मांग नहीं रखी, क्योंकि इससे दूसरा वर्ग असंतोषित हो सकता था।

❐ मूल्यांकन

कुछ आलोचकों का विचार है कि उदारवादियों को अधिक सफलता नहीं मिली। जिन मांगों को लेकर उन्होंने आंदोलन किए, वे मांगें पूरी नहीं हुईं। साथ ही उदारवादी निम्न वर्गों का समर्थन प्राप्त नहीं कर सके। किन्तु उदारवादी आंदोलन को असफल घोषित नहीं किया जा सकता है। वस्तुतः तत्कालिन परिस्थितियों के अनुरूप उन्होंने जो कार्य किए, वे अपने आप में महत्वपूर्ण थे। उन्होंने जो भी मांगें रखी यदि वे ब्रिटिश सरकार द्वारा मान ली गई होती, तो ब्रिटिश शासन स्वयं ही समाप्त हो जाता है। चूंकि ये मांगें पूरी नहीं की गई, तो इससे जनता को ब्रिटिश सरकार का वास्तविक स्वरूप ज्ञात हुआ तथा जनता में राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ।

उग्रवादी चरण : 1905 ई. के पश्चात्

1905 ई. के पश्चात् कांग्रेस में कुछ उग्रवादी/गरमपंथी (Extreemist) नेताओं का उद्भव हुआ। प्रारंभिक उग्रवादी नेता बाल गंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपत राय, अरविंद घोष आदि थे।

❐ उदय के कारण

1) **उदारवादी आंदोलन की असफलता** - उदारवादी नेताओं की आवेदन-निवेदन नीति की असफलता ने देश की जनता तथा खुद कांग्रेस के अन्दर असंतोष पैदा किया। ब्रिटिश सरकार द्वारा उदारवादियों की मागों के प्रति अपनाई जाने वाली उपेक्षापूर्ण नीति ने कांग्रेस के युवा नेताओं को अन्दर तक आंदोलित कर दिया। इन युवा नेताओं ने उदारवादियों के तरीकों को राजनीतिक भिक्षावृत्ति की संज्ञा दी तथा ब्रिटिश सरकार से अपनी मांगें मनवाने हेतु कठोर तरीके अपनाने की आवश्यकता पर बल दिया।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

2) **राजनीतिक निराशा** – 1892 ई. से 1905 ई. के मध्य हुई कुछ राजनीतिक घटनाओं, जैसे – 1892 ई. के इंडियन काउंसिल एक्ट से निराशा, 1897 ई. में तिलक को 18 माह का कारावास आदि ने कांग्रेस के कुछ युवा नेताओं को उग्र राजनीति अपनाने हेतु विवश किया।

3) **कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीति** – कर्जन ने अनेक जनविरोधी कदम उठाए, जिससे भारतीयों की भावनाएं आहत हुईं। उदाहरणार्थ – 1899 ई. में कलकत्ता नगर निगम भारतीय सदस्यों की संख्या घटा दी गई, 1903 ई. में अकाल के पश्चात् भी दिल्ली दरबार का आयोजन किया गया तथा एडवर्ड सप्तम को भारत का सम्राट घोषित किया गया, 1904 ई. में 'इंडियन ऑफिसियल सिक्रेट्स एक्ट' से प्रेस की स्वतंत्रता को सीमित कर दिया गया, 1904 ई. में ही 'इंडियन यूनिवर्सिटी एक्ट' से कलकत्ता विश्वविद्यालय पर सरकारी नियंत्रण स्थापित हो गया, 1905 ई. में बंगाल को विभाजित कर दिया गया। इन समस्त कार्यों के विरोध स्वरूप उग्रराष्ट्रवाद का उद्भव हुआ।

4) **अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का प्रभाव** – 1896 ई. में इथोपिया ने इटली को हराय, 1899 ई. में बोअर युद्ध में डचों ने अंग्रेजों को मुंहतोड़ जवाब दिया, 1905 ई. में एक छोटे-से एशियाई देश जापान ने एक विशाल यूरोपीय देश रूस को पराजित किया। इन घटनाओं से भारतीयों में उत्साह का संचार हुआ तथा उनमें संघर्ष एवं राष्ट्रीयता की भावना जागी।

5) **आत्मसम्मान एवं आत्मबलिदान का प्रसार** – स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, अरविंद घोष तथा तिलक जैसे राष्ट्रवादियों ने भारतीयों को आत्मसम्मान तथा आत्मबलिदान हेतु प्रेरित किया। इससे उनमें संघर्ष की प्रवृत्ति का विकास हुआ। विवेकानन्द ने लिखा कि भारत की एकमात्र आशा उसकी जनता है, ऊँचे वर्ग शारीरिक व नैतिक दृष्टि से मृतप्राय है। उसी प्रकार अरविंद घोष ने कहा कि स्वतंत्रता हमारे जीवन का परमउद्देश्य है, जिसकी प्राप्ति हेतु आत्मबलिदान आवश्यक है।

6) **आकाल व प्लेक का प्रकोप** – 1894 ई.–1898 ई. के दौरान पड़े आकाल और उससे उपजे प्लेग को दूर करने हेतु सरकारी अधिकारियों ने कोई गंभीर प्रयास नहीं किए। प्रतिक्रिया स्वरूप दामोदर हरि चापेकर ने पूना के प्लेग कमीश्नर रैण्ड तथा उसके सहायक लेफ्टीनेन्ट एम्हर्स्ट की हत्या कर दी। दामोदर हरि चापेकर को फांसी दे दी गई तथा उसे भड़काने के आरोप में बाल गंगाधर तिलक को 18 माह कैद की सजा दी गई। इससे भारतीय जनता में ब्रिटिश सरकार के प्रति आक्रोश उत्पन्न हुआ और उदारवादी नीति के सिद्धान्तों को तोड़ा जाने लगा।

❐ उद्देश्य

उग्रवादियों का प्रमुख उद्देश्य ब्रिटिश शासन को समाप्त कर स्वराज या स्वाधीनता की प्राप्ति करना था।

❐ विचारधारा

उग्रवादी विदेशी शासन से घृणा तथा तीव्र एवं उग्र परिवर्तन में विश्वास करते थे। फलतः उन्होंने विरोध हेतु हिंसात्मक एवं आत्मबलिदान जैसे तरीकों को अपनाया। उन्हें जनता की क्षमता पर पूर्ण विश्वास था तथा वे मानते थे कि जनता की सीधी कार्यवाही से ही परिवर्तन संभव है।

❐ कार्य-पद्धति

उग्रवादियों ने प्रार्थना, प्रतिवेदन तथा संस्मरण की राजनीति को राजनीतिक भिक्षावृत्ति की संज्ञा दी। उन्होंने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग, निष्क्रिय प्रतिरोध जैसे तरीकों को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु माध्यम बनाया।

❐ सीमाएं

1) उग्रवादी नेता भी मध्यम वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे। अतः वे भी कोई वास्तविक जनआन्दोलन लाने में असफल रहे।

2) उग्रवादियों ने धार्मिक प्रतीकों पर बल दिया, जिससे साम्प्रदायिकता का प्रसार हुआ।

3) उग्रवादियों एवं उदारवादियों के मध्य वैचारिक संघर्ष से राष्ट्रीय आन्दोलन कमजोर हुआ। 1907 ई. में सूरत अधिवेशन में कांग्रेस का विभाजन हो गया, जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन में रुकावट आई।

❐ उपलब्धियां

1) उग्रवादियों ने कांग्रेस के सामाजिक आधार का विस्तार किया। उनके प्रभाव से विद्यार्थी, युवा तथा महिलाएं भी राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़ी।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

2) उग्रवादियों ने विरोध हेतु बहिष्कार, स्वदेशी, निष्क्रिय प्रतिरोध, जुलूस, हड़ताल, राष्ट्रीय शिक्षा, ग्रामीण उत्थान, स्वावलम्बन, सृजनात्मक कार्य जैसे तरीकों को अपनाकर गांधीवादी कार्यक्रम का आधार निर्मित कर दिया।

3) उग्रवादियों ने ही सर्वप्रथम स्वराज की मांग की। आगे 1929 ई. तक कांग्रेस की यही प्रमुख मांग बनी रही।

❐ मूल्यांकन

कुछ आलोचकों का विचार है कि उग्रवादियों को अधिक सफलता नहीं मिली। उन्होंने मुख्यत: बंगाल विभाजन का विरोध किया, किन्तु वे बंगाल विभाजन को नहीं टाल सके। साथ ही उनके द्वारा अपनाए गए धार्मिक तरीकों से सम्प्रदायवाद को बढ़ावा मिला। अत: भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में इनका कोई विशेष महत्व नहीं है। किन्तु गहराई से पर्यवेक्षण करने पर यह ज्ञात हो जाता है कि उग्रवादियों ने ही कांग्रेस को युवा वर्ग के साथ जोड़ा, भविष्य के गांधीवादी आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार की तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन को द्वितीय चरण में नेतृत्व प्रदान किया। इस रूप में उग्रवादी आन्दोलन का भारत की स्वतंत्रता में विशेष महत्व है।

बंगाल विभाजन एवं स्वदेशी आन्दोलन

कर्जन ने 20 जुलाई, 1905 ई. में बंगाल को दो हिस्सों में विभाजित कर दिया। एक हिस्से में पूर्वी बंगाल व असम को तथा दूसरे हिस्से में पश्चिमी बंगाल, बिहार व उड़ीसा को रखा गया। इस विभाजन के विरोध स्वरूप स्वदेशी आन्दोलन की शुरुआत हुई।

❐ कारण

कर्जन का मत – तत्कालिन गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्जन के अनुसार अविभाजित बंगाल, जिसमें बिहार व उड़ीसा भी शामिल थे, काफी विस्तृत था और अकेला लेफ्टिनेन्ट गवर्नर उसका प्रशासन भली-भाँति नहीं चला पाता था। इससे मुस्लिम बहुल पूर्वी बंगाल के जिलों की प्राय: उपेक्षा होती थी, इसलिए प्रशासनिक सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए बंगाल का विभाजन किया गया।

वास्तविक कारण – बंगाल विभाजन का उद्देश्य मूल बंगाल में बंगालियों की आबादी कम कर उन्हें अल्पसंख्यक बनाना था। वास्तुत: तत्कालिन समय में बंगाल राष्ट्रवाद का प्रमुख केन्द्र था। अत: बंगाल को विभाजित कर राष्ट्रवाद को कमजोर करना ही इस विभाजन का वास्तविक कारण था।

❐ प्रतिक्रिया

1) राष्ट्रवादियों ने बंगाल विभाजन के वास्तविक कारण को समझा तथा इसे राष्ट्रवाद के विरुद्ध चुनौती के रूप में देखा।

2) विभाजन के विरोध में स्वदेशी आन्दोलन की शुरुआत हुई।

3) उग्रवादी राष्ट्रीयता का उद्भव हुआ।

❐ स्वदेशी आन्दोलन

स्वदेशी आन्दोलन की शुरुआत 7 अगस्त, 1905 ई. में कलकत्ता के टाऊन हाल की ऐतिहासिक बैठक में की गई। स्वदेशी आन्दोलन से जुड़े महत्वपूर्ण नेता सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी, कृष्णकुमार मित्र, पृथ्वीचन्द्र राय, तिलक, अरविंद घोष, विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपत राय आदि थे।

Shaping Your Dreams

◆ कार्यक्रम

1) विदेशी वस्तुओं, सरकारी स्कूलों, अदालतों, नौकरियों, उपाधियों आदि का बहिष्कार।

2) हड़ताल करके प्रशासन को पंगु बनाना।

3) महिलाओं द्वारा विदेशी दुकानों पर धरना देना।

4) सामाजिक कुरीतियों, जैसे – बाल विवाह, दहेज, शराब आदि का विरोध करना।

5) आत्मनिर्भरता हेतु स्वदेशी शिक्षा, उद्योग, कला तथा विज्ञान को प्रोत्साहन देना।

◆ कार्य-पद्धति

सभाओं, नारों (वंदे मातरम्, आमार सोनार बांग्ला, एकला चलो रे आदि), परम्परागत् त्यौहारों, मेलों, लोक परम्पराओं, लोक संगीत, लोक नाट्य तथा धार्मिक उत्सवों (गणेश महोत्सव, शिवाजी जंयति आदि) आदि के माध्यम से स्वदेशी आन्दोलन का प्रचार-प्रसार करना।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **प्रसार**

ब्रिटिश सरकार द्वारा 16 अक्टूबर, 1905 ई. में बंगाल विभाजन को लागू कर दिया गया। इस दिन को पूरे बंगाल में शोक दिवस के रूप में मनाया गया। लोगों ने एक-दूसरे के हाथों पर राखियां बांधकर एकता प्रदर्शित की। स्वदेशी आन्दोलन का नेतृत्व बंगाल में अरविंद घोष व सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी ने, मुम्बई व पुणे में बाल गंगाधर तिलक ने, पंजाब व उत्तर प्रदेश में अजीत सिंह व लाला लाजपत राय ने, दिल्ली में सैय्यद हैदर रजा ने, मद्रास प्रेसिडेंसी में चित्तम्बरम् पिल्ले ने संभाला। इस प्रकार स्वदेशी आन्दोलन बंगाल से प्रारंभ हुआ था, परन्तु शीघ्र ही इसका प्रसार सम्पूर्ण भारत में हो गया।

- **विभिन्न वर्गों की भूमिका**

स्वदेशी आन्दोलन में विद्यार्थियों तथा महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, किन्तु इस आन्दोलन में मुसलमान कृषकों की महत्वपूर्ण सहभागिता नहीं रही।

- **स्वदेशी आन्दोलन का अंत**

स्वदेशी आन्दोलन 1908 ई. तक आते-आते कमजोर पड़ गया। इसके अनेक कारण थे -

1) ब्रिटिश सरकार ने कठोर दमनचक्र चलाकर महत्वपूर्ण नेताओं को जेल में डाल दिया था।
2) आन्दोलन से जुड़े महत्वपूर्ण नेता अरविंद घोष व विपिनचन्द्र पाल ने सक्रिय राजनीति से संयास ले लिया था।
3) 1907 ई. में हुए कांग्रेस विभाजन का आन्दोलन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा।
4) स्वदेशी आन्दोलन के पास गांधीवादी आन्दोलन के अनुरूप कोई प्रभावी संगठन व नेतृत्व नहीं था।
5) वस्तुतः कोई जनआन्दोलन लगातार नहीं चल सकता। जनता को आन्दोलन में ऊर्जा प्राप्त करने हेतु ठहराव की आवश्यकता होती है। स्वदेशी आन्दोलन के साथ भी ऐसा ही हुआ।

- **प्रभाव**

❖ **सकारात्मक**

1) स्वदेशी आन्दोलन में राष्ट्रवाद के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।
2) आन्दोलन के दौरान स्वदेशी उद्योग, शिक्षा, कला, साहित्य, विज्ञान आदि का विकास हुआ। अनेक स्वदेशी उद्योगों की स्थापना हुई, जैसे - पी. सी. राय द्वारा स्थापित बंगाल केमिकल फैक्ट्री। स्वदेशी एवं राष्ट्रीय शिक्षा संस्थानों की भी स्थापना हुई, जैसे - बंगाल नेशनल कॉलेज, राष्ट्रीय शिक्षा परिषद्, बंगाल इंस्टिट्यूट आदि। साथ ही स्वदेशी एवं हिन्दू-मुस्लिम समन्वित कला के विकास में अविन्द्रनाथ टैगोर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उसी प्रकार स्वदेशी साहित्य में बांग्ला साहित्य का व्यापक विकास हुआ, जिसमें रविन्द्रनाथ टैगोर, रजनीकांत सेन, दक्षिणारंजन मित्र की महत्वपूर्ण भूमिका रही। साथ ही स्वदेशी विज्ञान के क्षेत्र में जगदीशचन्द्र बोस, पी. सी. राय आदि ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।
3) स्वदेशी आन्दोलन के दौरान ही स्वराज की मांग की गई थी, जो 1929 ई. तक कांग्रेस की प्रमुख मांग बनी रही।
4) इस आन्दोलन के द्वारा नवीन कार्य पद्धति, जैसे - निष्क्रिय प्रतिरोध, असहयोग, बहिष्कार, सामाजिक सुधार आदि को अपनाया गया, जिसने भविष्य के गांधीवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि निर्मित कर दी।

❖ **नकारात्मक**

1) आन्दोलन के दौरान अपनाए गए धार्मिक प्रतीकों व नारों ने साम्प्रदायिकता को जन्म दिया।
2) आन्दोलन के दौरान उदारवादी एवं उग्रवादी विवाद के परिणामस्वरूप 1907 ई. में कांग्रेस का विभाजन हो गया।
3) इस आन्दोलन में कृषक वर्ग की महत्वपूर्ण सहभागिता नहीं रही।

- **निष्कर्ष**

प्रथम दृष्टतः प्रतीत होता है कि स्वदेशी आन्दोलन असफल रहा, क्योकि यह आन्दोलन बंगाल विभाजन के मुद्दे पर शुरू हुआ था, किन्तु यह विभाजन को नहीं रोक सका। इसके बावजूद इसे असफल कहना गलत होगा, क्योंकि स्वदेशी आन्दोलन ने सम्पूर्ण भारत में राष्ट्रीय चेतना का संचार किया। वस्तुतः स्वदेशी आन्दोलन उपनिवेशवाद के विरुद्ध प्रथम सशक्त आन्दोलन था, जिसने गांधीवादी आन्दोलनों की पृष्ठभूमि निर्मित कर दी थी।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

सूरत विभाजन : 1907 ई.

1907 ई. में कांग्रेस के सूरत अधिवेश में कांग्रेस दो भागों में विभाजित हो गई। इस अधिवेशन में गरमपंथियों को कांग्रेस से निकालकर बाहर कर दिया गया।

❐ कारण

सूरत में हुए कांग्रेस के विभाजन हेतु निम्नलिखित कारण उत्तरदायी थे –

1) बंगाल विभाजन के दौरान गरमपंथी स्वदेशी व बहिष्कार आन्दोलन को बंगाल तक सीमित न रखकर उसे देश के अन्य हिस्सों तक पहुंचाना चाहते थे। साथ ही वे विदेशी माल के बहिष्कार के अलावा ब्रिटेन को किसी तरह का सहयोग न दिए जाने की मांग कर रहे थे। इसके विपरीत नरमपंथी स्वदेशी व बहिष्कार को केवल बंगाल तथा विदेशी माल तक ही सीमित रखना चाहते थे।

2) 1907 ई. में होने वाले कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में अध्यक्ष के पद को लेकर गरमपंथी एवं नरमपंथी नेताओं में मतभेद उत्पन्न हो गया था। गरमपंथी लाला लाजपत राय को नेता बनाना चाहते थे, किन्तु इस अधिवेशन में नरपंथियों ने राजबिहारी घोष को अध्यक्ष बनाया।

3) प्रारंभ में 1907 ई. में होने वाले कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन का स्थान नागपुर निश्चित किया गया था, किन्तु यहां गरमपंथियों का अधिक प्रभाव को देखते हुए नरमपंथी नेता यह अधिवेशन सूरत में आयोजित करवाने में सफल रहे थे। इससे भी गरमपंथियों में आक्रोश था।

4) सूरत विभाजन का एक प्रमुख कारण यह अफवाह भी थी कि 1906 ई. में हुए कलकत्ता अधिवेशन में पारित स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा तथा स्वालम्बन संबंधी प्रस्ताव रद्द कर दिए जाएंगे, जिससे गरमपंथी नेताओं ने सूरत अधिवेशन के पूर्व ही आक्रोश था।

5) सूरत विभाजन के पीछे एक प्रमुख कारण व्यक्तित्व की ठकराहट थी। वस्तुत: इस अधिवेशन से पूर्व तिलक के शिष्य आगरकर रानाड़े के खेमे में चले गए थे, जबकि तिलक तथा रानाड़े के गुट में व्यक्तिगत विरोध था।

❐ परिणाम

1) सूरत विभाजन का कांग्रेस पर विपरीत प्रभाव पड़ा। इस विभाजन के उपरान्त कांग्रेस का सामाजिक आधार सीमित हो गया।

2) सूरत विभाजन का स्वदेशी आन्दोलन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इस विभाजन के उपरान्त एक वर्ष के अन्दर स्वदेशी आन्दोलन समाप्त हो गया।

3) भारत के राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा तथा आन्दोलन की गति धीमी पड़ गई।

4) अंग्रेजों को सूरत विभाजन से लाभ हुआ। अंग्रेजों ने गरमपंथी नेताओं पर सख्त कार्यवाही की तथा नरमपंथी की मांगों को भी नजरअंदाज किया।

❐ निष्कर्ष

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि सूरत विभाजन का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में विपरीत प्रभाव ही पड़ा था। हांलाकि राष्ट्रीय नेताओं ने शीघ्र ही पारस्परिक सहयोग के महत्व को समझते हुए एक बार पुन: एकजुट होने का सकल प्रयास किया। फलत: 1916 ई. में लखनऊ में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में गरमपंथी नेताओं को पुन: शामिल कर लिया गया।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

होमरूल आन्दोलन

'**होमरूल**' आयरलैण्ड का शब्द है। होमरूल आन्दोलन से मुख्यत: एनी बेसेन्ट एवं बाल गंगाधर तिलक का नाम जुड़ा है।

- **उद्देश्य**

1) ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन रहते हुए संवैधानिक तरीके से **स्व-शासन** (होमरूल) प्राप्त किया जाए।

2) जातिवाद एवं छूआछूत के विरुद्ध अभियान चलाना।

3) लोगों को राजनीतिक शिक्षा देना।

तिलक की होमरूल लीग
- स्थापना : 28 अप्रैल 1916। स्थान : पूना।
- प्रथम अध्यक्ष : जोसेफ बैपटिस्टा। सचिव : एन. सी. केलकर।
- क्षेत्र : कर्नाटक, महाराष्ट्र (मुम्बई को छोड़कर), मध्य प्रांत तथा बरार।
- प्रचार का माध्यम : मराठा और केसरी।

एनी बेसेन्ट की अखिल भारतीय होमरूल लीग
- स्थापना : सितंबर 1916। स्थान : मद्रास।
- प्रथम अध्यक्ष : एनी बेसेन्ट। सचिव : जॉर्ज अरुण्डेल।
- अन्य सदस्य : महात्मा गांधी एवं सी. आर. दास को छोड़कर तत्कालीन समय के प्राय: सभी महत्वपूर्ण नेता जैसे - मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, तेजबहादुर सप्रू, मदनमोहन मालवीय, सुब्रमण्यम् अय्यर आदि।
- क्षेत्र : तिलक के क्षेत्रों को छोड़कर देश के बाकी सभी हिस्सों में होमरूल लीग आन्दोलन को फैलाने का दायित्व एनी बेसेन्ट पर था।
- प्रचार का माध्यम : न्यू इंडिया तथा कॉमनवील।

- **आन्दोलन का अन्त**

ब्रिटिश सरकार ने आन्दोलन के प्रति दमनकारी नीति अपनाई। तिलक एवं विपिनचन्द्र पाल के दिल्ली एवं पंजाब में प्रवेश पर रोक लगा दी गई। ऐनी बेसेन्ट, जार्ज अरूण्डेल एवं वी. पी. वाडिया को नजरबंद कर दिया गया। इसी समय भारत सचिव माण्टेग्यू द्वारा 20 अगस्त, 1917 ई. को ब्रिटेन की कॉमन सभा में एक प्रस्ताव पढ़ा गया, जिसे **माण्टेग्यू घोषणा-पत्र** के नाम से जाना जाता है। इसमें भारत को **उत्तरदायी शासन** प्रदान करने की बात की गई, परिणामस्वरूप एनी बेसेन्ट ने 20 अगस्त, 1917 ई. को होमरूल लीग को समाप्त करने की घोषणा की। दूसरी ओर बेलेन्टाइन चिरोल ने तिलक को अशांति का जनक कहा था, जिस कारण तिलक मानहानि के मुकदमे के संदर्भ में इंग्लैण्ड चले गए। फलस्वरूप आन्दोलन नेतृत्व विहीन हो गया।

- **महत्व**

इस आन्दोलन ने पहली बार एक राष्ट्रव्यापी आन्दोलन को जन्म दिया और गांधी के लिए भावी राष्ट्रीय आन्दोलन की आधारशिला तैयार की। इसने कांग्रेस को ऊर्जावान बनाया तथा राजनीतिक शून्यता के दौर में राष्ट्रीय आन्दोलन को गति प्रदान की। इस आन्दोलन के ही परिणामस्वरूप भारत शासन अधिनियम 1919 ई. पारित हुआ।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

गांधीवादी आन्दोलन : 1917 ई. - 1947 ई.

गांधीजी का उदय

महात्मा गांधीजी के उद्‌भव में कुछ वस्तुपरक (Objective) तथा व्यक्तिपरक (Subjective) कारकों की भूमिका थीं। यहां वस्तुपरक कारकों से आशय उन परिस्थितियों से है, जिनकी वजह से गांधीजी का उदय हुआ, जबकि व्यक्तिपरक कारकों से आशय गांधीजी की विचारधारा एवं कार्य-प्रणाली से है।

❐ वस्तुपरक कारक

1) **राजनीतिक शून्यता** - भारतीय राजनीति में गांधी के आगमन के समय कांग्रेस का नेतृत्व प्रभावहीन था। उदारवादी राजनीति से भारतीय जनता की आस्था लगभग समाप्त हो गई थी। वहीं उग्रवादी नेता भी वास्तविक जनआंदोलन लाने में विफल रहे थे। कांग्रेस के बड़े नेता दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, गोखले की मृत्यु हो चुकी थीं, जबकि तिलक भी बूढ़े हो चुके थे। इस प्रकार गांधीजी के आगमन के समय राजनीतिक शून्यता थी, जिसका लाभ गांधीजी को प्राप्त हुआ।

2) **दक्षिण अफ्रीका का अनुभव** - गांधीजी ने अपनी कार्यप्रणाली (सत्याग्रह, असहयोग, सविनय अवज्ञा आदि) का विकास एवं प्रयोग दक्षिणी अफ्रीका में ही कर लिया था। चूंकि भारत एवं दक्षिण अफ्रीका की स्थिति लगभग एक जैसी थी, दोनों ही बहुभाषा-भाषी, नस्ल व सम्प्रदाय आधारित देश थे। अतः गांधीजी के लिए दक्षिणी अफ्रीका का अनुभव उपयोगी सिद्ध हुआ।

3) **प्रथम विश्वयुद्ध जनित समस्याएं** - गांधीजी के आगमन के समय भारत प्रथम विश्वयुद्ध से उपजी समस्याओं से ग्रसित था। कृषकों पर अत्यधिक करारोपण किया जा रहा था, मजदूरों के अधिकारों को समाप्त कर दिया गया था, पूंजीपति वर्ग को पुनः ब्रिटिश उद्योगों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही थी। इस प्रकार गांधीजी के आगमन के समय भारत में समस्त वर्गों में असंतोष था, जिसका लाभ स्वाभाविक रूप से गांधीजी को था। उसी प्रकार प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत वैश्विक स्तर पर साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध किया जा रहा था। गांधीजी के आगमन के समय वैश्विक स्तर पर आंदोलन की मनःस्थिति तैयार हो गई थी। इस प्रकार गांधीवादी आंदोलन एक दृष्टि से विश्व स्तर पर हो रही राजनीतिक जाग्रति से भी प्रभावित हुआ।

❐ व्यक्तिपरक कारक (गांधीजी की विचारधारा)

व्यक्तिपरक कारकों के अंतर्गत गांधीजी की विचारधारा एवं कार्य-पद्धति (रणनीति) का विशेष महत्व है।

1) **सत्य, अहिंसा एवं सत्याग्रह** - गांधीजी की विचारधारा सत्य, अहिंसा एवं सत्याग्रह पर आधारित थी। अहिंसा के माध्यम से असत्य पर आधारित बुराई का विरोध करना ही सत्याग्रह है। यहां सत्याग्रह का अर्थ है - सत्य के प्रति आग्रह, अर्थात् - सत्य के मार्ग से किसी भी बाधा या यातना के बावजूद विचलित नहीं होना।

सत्याग्रह की अवधारणा हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त को स्वीकार करती है। सत्याग्रह में सत्य एवं अहिंसा के प्रयोग से विरोधी को महसूस कराया जाता है कि उसका मार्ग असत्य व बुराई का है, जिससे विरोधी स्वयं ही बुराई छोड़कर भलाई की ओर अग्रसर हो जाता है। गांधीजी ने सत्याग्रह के साधनों के रूप में हड़ताल, धरना, बहिष्कार आदि का प्रयोग किया।

यहां उल्लेखनीय हैं कि सत्याग्रह एवं निष्क्रिय प्रतिरोध में व्यापक अंतर है। निष्क्रिय प्रतिरोध में शोषक के प्रति आक्रोश का भाव होता है, जबकि सत्याग्रह में शोषक के प्रति मानवीय भाव रखा जाता है। निष्क्रिय प्रतिरोध से प्राप्त लक्ष्य प्रायः अल्पकालिक होता है, क्योंकि शोषक को जैसे ही पुनः शोषण करने का मौका प्राप्त होता है, वह पुनः समस्या उत्पन्न कर देता है। इसके विपरीत सत्याग्रह से प्राप्त लक्ष्य दीर्घकालिक होता है, क्योंकि इससे दोनों पक्षों को आत्मिक संतोष मिलता है।

2) **साधन एवं साध्य की पवित्रता** - गांधीजी ने साधन एवं साध्य दोनों की पवित्रता पर बल दिया है। गांधीजी के अनुसार जैसा साधन होगा, वैसा ही साध्य होगा। यहां साधन की तुलना बीज से तथा साध्य की वृक्ष से की जा सकती है। बीज से ही वृक्ष की उत्पत्ति होती है और वृक्ष की प्रकृति, बीज की प्रकृति के अनुरूप ही होती है। यही कारण था कि गांधीजी ने स्वराज जैसे पवित्र साध्य की प्राप्ति हेतु सत्याग्रह जैसे पवित्र साधन का ही प्रयोग किया।

3) **वर्ग-समन्वय** - गांधीजी ने मार्क्सवादियों की वर्ग-संघर्ष की अवधारणा के विपरीत वर्ग-समन्वय पर बल दिया तथा वर्ग-समन्वय के माध्यम से ही स्वतंत्रता प्राप्ति का प्रयास किया।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

4) **सर्वोदय** – गांधीजी ने उपयोगितावादी सिद्धान्त 'अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख' की बजाय सर्वोदय, अर्थात् – सभी का समान उदय पर बल दिया। सर्वोदय के अंतर्गत गांधीजी ने प्रत्येक व्यक्ति के भौतिक एवं आध्यात्मिक कल्याण को स्वीकार किया।

5) **ट्रस्टीशिप सिद्धान्त** – गांधीजी ने पूंजीवाद एवं समाजवाद का समन्वय करते हुए ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त दिया। इस सिद्धान्त के अनुसार एक निश्चित सीमा पर संपत्ति पर निजी स्वामित्व स्वीकार किया जाएगा। जबकि पूंजीपति वर्ग अपनी अतिरिक्त सम्पत्ति सामान्य जनता में बांट देनी चाहिए।

6) **लघु एवं कुटीर उद्योगों का समर्थन** – गांधीजी ने मशीनीकरण की आलोचना करते हुए लघु एवं कुटीर उद्योगों का समर्थन किया है। गांधीजी के अनुसार भारत के विकास हेतु गांव का विकास आवश्यक है तथा गांव का विकास लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास पर ही आधारित है।

7) **जाति एवं लिंग समानता पर बल** – गांधीजी ने यद्यपि वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया है, किन्तु उन्होंने जन्म की बजाय कर्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था को स्वीकारा है। गांधीजी जाति प्रथा तथा लिंग असमानता का विरोध करते थे। उनके अनुसार राष्ट्रीय आन्दोलन की सफलता में विभिन्न जातियों एवं महिलाओं के सहयोग की भी महत्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए।

8) **मातृभाषा में उत्पादन संबंधी शिक्षा पर बल** – गांधीजी ने अंग्रेजी शिक्षा पद्धति की जगह मातृभाषा में दी जाने वाली उत्पादन की शिक्षा का समर्थन किया है। इस प्रकार गांधीजी ने व्यवसायी एवं तकनीकी शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया है।

❐ गांधीजी की कार्य-पद्धति (रणनीति)

1) **संघर्ष-विराम-संघर्ष की राजनीति** – गांधीजी के अनुसार जनांदोलन लगातार लंबे समय तक नहीं चल सकता, क्योंकि जनता में दमन सहने और बलिदान करने की शक्ति असीम नहीं होती। अतः जनता को प्रथम चरण के संघर्ष के उपरान्त, द्वितीय चरण के संघर्ष हेतु विराम की आवश्यकता होती है, ताकि जनता द्वितीय चरण के संघर्ष के लिए ऊर्जा प्राप्त कर सके।

2) **दबाव समझौता दबाव की रणनीति** – गांधीजी ने संघर्ष के साथ-साथ समझौते पर भी बल दिया। गांधीजी ने प्रारंभिक दबाव के उपरान्त शत्रु से समझौता कर शेष रह गए उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पुनः शत्रु पर दबाव बनाने की नीति अपनाई। जनांदोलनों को वापस लेना और फिर शुरू करना गांधीजी की इसी रणनीति का एक पहलू था।

3) **जनता की केन्द्रीय भूमिका पर बल** – गांधीजी ने राष्ट्रीय आंदोलन में जनता की केन्द्रीय भूमिका को स्वीकार किया। उनके अनुसार किसी भी आन्दोलन की शक्ति उसमें भाग लेने वाली जनता पर निर्भर करती है।

4) **नियंत्रित जनांदोलन पर बल** – गांधीजी नियंत्रित जनांदोलन के पक्षधर थे। वे जनता के आंदोलन को एक निश्चित दायरे में रखना चाहते थे, यह दायरा सत्याग्रह और अहिंसा का था। वस्तुतः गांधीजी इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि अनियंत्रित जनांदोलन से साम्राज्यवादी सत्ता को उसके दमन करने का नैतिक आधार प्राप्त हो जाता है।

5) **साधारण जीवनशैली** – गांधीजी ने अपनी नीतियों व उद्देश्यों को अमलीजामा पहनाने हेतु साधारण जीवनशैली को अपनाया। वे तीसरी श्रेणी में यात्रा करते थे, आसान क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग करते थे तथा खान-पान एवं वेश-भूषा में सामान्य वस्तुओं का प्रयोग करते थे। इस प्रकार गांधीजी ने सामान्य जनता की विशेषताओं को धारित कर उनके बीच लोकप्रियता प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की।

6) **रचनात्मक कार्य** – गांधीजी ने रचनात्मक कार्यों, जैसे – कताई, बनाई, खादी, चरखा आदि पर दिया। अपने इन रचनात्मक कार्यों से गांधाजी ने न केवल स्वावलम्बी बनने की शिक्षा दी, बल्कि स्वदेशी को भी प्रोत्साहन दिया।

❐ गांधी के उदय में अफवाहों की भूमिका

कुछ इतिहासकारों का यह मानना है कि गांधीजी द्वारा दक्षिणी अफ्रीका में किए गए आन्दलनों की सफलता ने उन्हें भारत में देवदूत के रूप में प्रचारित कर दिया था। यही कारण था कि गांधीजी को विभिन्न क्षेत्रों में लोकप्रियता प्राप्त हुई। किन्तु गांधीजी को मिली सफलता यदि अफवाहों पर निर्भर होती, तो निश्चित ही ऐसी लोकप्रियता अल्पकालिक होती, जबकि गांधीजी की लोकप्रियता को दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। यहां तक कि मृत्यु के उपरान्त भी गांधीजी की लोकप्रियता में वृद्धि ही हुई। अतः गांधीजी के उद्भव में अफवाहों की नहीं, बल्कि गांधीजी के विचारों एवं उनकी कार्य-पद्धति की ही महत्वपूर्ण भूमिका थी।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

खिलाफत आन्दोलन

❐ कारण

प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की ने जर्मनी के साथ मिलकर मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया था, किन्तु 1918 ई. में मित्र राष्ट्रों की विजय हुई। अत: युद्ध के उपरान्त ब्रिटेन का रूख तुर्की के विरुद्ध हो गया। उसी समय यह अफवाह फैली कि तुर्की पर ब्रिटिश सरकार अपमानजनक संधि थोप रही है, जिसके अनुसार खलीफा का पद समाप्त तथा तुर्की सम्राज्य का विभाजन कर दिया जाएगा। इसके विरोध में 1919-20 ई. में भारत के मुसलमानों ने ब्रिटेन के विरोध में खिलाफत आन्दोलन छेड़ दिया।

❐ उद्देश्य

1) खलीफा के पद एवं सर्वोच्चता को बनाए रखना।

2) तुर्की सम्राज्य का विभाजन रोकना।

❐ कार्यक्रम

असहयोग आन्दोलन के अनुरूप (पेज नं.)।

❐ प्रारंभ व प्रसार

1919 ई. में हकीम अजमल खान, मौलाना अबुल कलाम आजाद, अलीबंधु आदि नेताओं ने अखिल भारतीय खिलाफत कमेटी का गठन किया। नवम्बर, 1919 ई. में अखिल भारतीय खिलाफत कॉन्फ्रेंस (दिल्ली) का अध्यक्ष गांधीजी को चुना गया। गांधीजी ने ब्रिटिश सरकार से खलीफा के साथ न्याय करने की मांग की तथा ऐसा न होने पर ब्रिटिश सरकार का असहयोग करने की धमकी दी।

मई, 1920 ई. में हुई सेब्रे की संधि के पश्चात् आक्रोश बढ़ गया तथा जून, 1920 ई. में केन्द्रीय खिलाफत समिति की बैठक (इलाहाबाद) में असहयोग आन्दोलन करने का फैसला लिया गया। 1 अगस्त, 1920 ई. को प्रारंभ हुए असहयोग आन्दोलन का एक प्रमुख मुद्दा खिलाफत से भी संबंधित था।

❐ असफलता के कारण

1) असहयोग व खिलाफत आन्दोलन साथ-साथ चले, किन्तु असहयोग आन्दोलन के प्रभाव में खिलाफत आन्दोलन दब गया।

2) ब्रिटिश सरकार ने तीव्र दमनचक्र चलाकर शीघ्र ही इस आन्दोलन से जुड़े नेताओं को गिरफ्तार कर लिया था।

3) 1924 ई. में तुर्की में मुस्तफा कमाल पाशा का उदय हुआ, जिसने खलीफा के पद को ही समाप्त कर दिया था। अत: 1924 ई. में खिलाफत आन्दोलन समाप्त हो गया।

❐ परिणाम

1) राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में मुस्लिम जमात की भागीदारी प्रारंभ हुई।

2) मुस्लिम नेताओं का एक गुट हमेशा के लिए ब्रिटिश सरकार का विरोध हो गया, जैसे - अबुल कलाम आजाद, हकीम अजमल खान, अलीबंधु आदि।

3) चूंकि यह आन्दोलन मुस्लिम धर्म के मुद्दे पर प्रारंभ हुआ था, अत: आगे चलकर इससे साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन मिला।

❐ मूल्यांकन

खिलाफत आन्दोलन प्रारंभ करने के निर्णय को गांधीजी की एक राजनीतिक भूल बताया जाता है। आलोचकों के अनुसार असहयोग आन्दोलन विशुद्ध राजनीतिक आन्दोलन था। गांधीजी ने खिलाफत जैसे धार्मिक मुद्दे को भी इसमें शामिल कर दिया था, जिससे हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिला। किन्तु इसे गांधीजी की राजनीतिक भूल मानना उचित नहीं है। चूंकि अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई फूट डालो और शासन करो की नीति के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन में मुस्लिम जनता का व्यापक सहयोग नहीं मिल रहा था। अत: गांधीजी ने खिलाफत के प्रश्न पर मुस्लिम जमात को भी राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ने का निर्णय लिया। फिर गांधीजी द्वारा मुस्लिम धर्म से संबंधित किसी मसले की पैरवी करना गलत नहीं था, क्योंकि इससे दूसरे धर्मों की मान्यताएं खण्डित नहीं होतीं। गांधीजी ने तो हिन्दू धर्म में प्रचलित मान्यताओं पर भी आन्दोलन किए, जैसे - सती प्रथा व गौ-हत्या के विरोध में। किन्तु जब ऐसे मसलों पर गांधीजी द्वारा किए गए विरोध को साम्प्रदायिकता का कारण नहीं माना जाता, तो फिर खलीफा के प्रश्न पर किए गए आन्दोलन को भी साम्प्रदायिकता हेतु उत्तरदायी मानना तर्कसंगत नहीं है। हम यह भी जानते हैं कि साम्प्रदायिकता के उद्भव में खिलाफत आन्दोलन का नहीं, बल्कि अंग्रेजों की फूट डालो और शासन करो की नीति, मुस्लिम लीग तथा हिन्दू महासभा की कट्टर धार्मिक नीतियों का ही प्रमुख योगदान था।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

असहयोग आन्दोलन

❐ कारण

1) रोलेक्ट एक्ट (1919 ई.) के अनुसार मजिस्ट्रेट किसी भी संदेहास्पद व्यक्ति को गिरफ्तार कर उसे अनिश्चित काल के लिए जेल में रख सकता था। इस एक्ट के विरोध में कांग्रेस के नेताओं में आक्रोश था।

2) माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड अधिनियम (1919 ई.) में प्रांतों में द्वैध शासन प्रणाली को लागू किया जाना था। इस अधिनियम के विरोध में भी कांग्रेस के नेताओं में आक्रोश था।

3) जलवाला बाग हत्याकाण्ड की जांच के लिए गठित हंटर कमेटी (1919 ई.) की रिपोर्ट में सम्पूर्ण प्रकरण लीपापोती करने का प्रयास किया गया तथा जनरल ओ डायर को निर्दोष घोषित किया गया। इस रिपोर्ट के विरोध में कांग्रेस के नेताओं में आक्रोश था।

4) खिलाफत के मुद्दे पर भी कांग्रेस के मुस्लिम नेताओं में आक्रोश था।

5) प्रथम विश्वयुद्धजनित आर्थिक कठिनाइयों से कृषकों, मजदूरों, दस्तकारों, मध्यम वर्गों सभी में आक्रोश था।

❐ उद्देश्य

असहयोग आन्दोलन का प्रमुख उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन ही स्वराज्य की प्राप्ति करना था।

❐ कार्यक्रम

1) ब्रिटिश उपाधियों, वस्तुओं, स्कूलों, अदालतों, काउंसिल आदि का बहिष्कार करना।

2) स्वदेशी उद्योगों, शिक्षा संस्थानों, अदालतों की स्थापना करना।

3) चरखा एवं कताई-बनाई का प्रचार करना।

4) छूआछूत एवं अस्पृश्यता को समाप्त करना।

5) हिन्दू-मुस्लिम एकता को बढ़ावा देना।

6) तिलक कोष के लिए एक करोड़ की राशि एकत्रित करना।

7) कांग्रेस का जनाधार बढ़ाकर एक करोड़ तक करना।

कांग्रेस का जनाधार बढ़ाने हेतु संगठनात्मक स्तर पर कांग्रेस में अनेक परिवर्तन किए गए, जैसे - कांग्रेस के रोजमर्रा के काम को देखने हेतु 15 सदस्यीय कार्यसमिति गठित की गई, महत्वपूण मसलों पर चर्चा करने हेतु 350 सदस्यीय अखिल भारतीय कमेटी बनाई गई, भाषायी आधार पर प्रांतीय कांग्रेस समितियों का गठन किया गया, जिला, ताल्लुका, गांव एवं मोहल्ला स्तर पर कांग्रेस समितियां गठित की गईं, कांग्रेस की सदस्यता शुल्क चार आना सालाना कर दिया गया आदि।

❐ प्रारंभ व प्रसार

1920 ई. के नागपुर अधिवेशन में कांग्रेस ने असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव पारित किया। 1 अगस्त, 1920 ई. को असहयोग आन्दोलन प्रारंभ हो गया। गांधीजी ने 'कैसर-ए-हिन्द' तथा जमनालाल बजाज ने 'राय बहादुर' की उपाधि त्याग दी। साथ ही अनेक वकीलों, जैसे - सी. आर. दास, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, विट्ठलभाई पटेल, वल्लभभाई पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, अरूणा आसफ अली, राजगोपालाचारी आदि ने वकालत छोड़ दी। इसी आन्दोलन के मध्य माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड अधिनियम (1919 ई.) के उद्घाटन हेतु भारत आए 'ड्यूक ऑफ कॉमन्स' का बहिष्कार किया गया। नवम्बर, 1921 ई. में भारत आए 'प्रिंस ऑफ वेल्स' को काले झंडे दिखाए गए। उसी प्रकार पंजाब में सिखों ने अकाली आंदोलन शुरू किया, असम में चाय बगानों के मजदूरों ने हड़ताल की, मिदनापुर के किसानों ने यूनियन बोर्ड को कर देने से इन्कार कर दिया, मालाबार में जमींदारों के विरोध में मुस्लिम कृषकों ने आन्दोलन शुरू कर दिया आदि।

इस प्रकार असहयोग आन्दोलन का प्रसार सम्पूर्ण भारत में हुआ। किन्तु 1921 ई. में नियुक्त वायसराय लॉर्ड रीडिंग ने कठोर दमनचक्र चलाते हुए कांग्रेस के महत्वपूर्ण नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। इसके विरोध में गांधीजी ने 1 फरवरी, 1922 ई. को कहा कि अगर 7 दिनों के अन्दर राजनीतिक बंदियों को रिहा नहीं किया गया, तो कर न अदायगी हेतु सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारंभ किया जाएगा। किन्तु इसी बीच 5 फरवरी, 1922 ई. को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में चौरा-चोरीकाण्ड के पश्चात् गांधीजी ने 12 फरवरी, 1922 ई. को बारदोली में कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक में असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ मूल्यांकन

असहयोग आन्दोलन का प्रमुख उद्देश्य स्वराज की प्राप्ति करना था। गांधीजी ने भी आन्दोलन के प्रारंभ में एक वर्ष के अन्दर स्वराज प्राप्त होने की बात कही थी। किन्तु स्वराज तो दूर अंग्रेजों ने छोटी-मोटी रियायतें भी नहीं दी। इस आधार पर असहयोग आन्दोलन को असफल कहा जा सकता है। किन्तु असहयोग आन्दोलन की अनेक उपलब्धियां थीं। इसने एक बहुत बड़े जनमानस को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ा। असहयोग आन्दोलन का प्रसार लगभग सम्पूर्ण भारत में हुआ। इस आन्दोलन में कृषकों, मजदूरों, दस्तकारों, व्यापारियों, विद्यार्थियों, महिलाओं, मुस्लिमों आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रकार असहयोग आन्दोलन ने कांग्रेस, जो अभी तक बुद्धिजीवियों की संस्था मानी जाती थी, को जनकांग्रेस में तब्दिल कर दिया।

वस्तुत: असहयोग आन्दोलन समाप्त नहीं हुआ था, बल्कि इसे स्थगित किया गया था। हम जानते हैं कि गांधीजी संघर्ष-विराम-संघर्ष की राजनीति में विश्वास करते थे, जिसके अनुसार राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन के अनेक चरण होंगे तथा एक चरण में हुए संघर्ष की समाप्ति के उपरान्त विराम की आवश्यकता होगी, ताकि अगले चरण के लिए ऊर्जा प्राप्त की जा सके। इस रूप में असहयोग आन्दोलन राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन का एक प्रमुख चरण था तथा इसने व्यापक जनसमर्थन को प्राप्त कर अगले चरण हेतु मजबूत पृष्ठभूमि निर्मित की। अत: असहयोग आन्दोलन को असफल नहीं कहा जा सकता है।

❐ आन्दोलन को वापस लिया जाना

गांधीजी द्वारा चौरा-चोरी जैसी छोटी-सी घटना पर असहयोग आन्दोलन को स्थगित किए जाने पर उनकी आलोचना की जाती है। रजनीपाम दत्त के अनुसार गांधीजी ने यह आन्दोलन पूंजीपति वर्ग की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए स्थगित किया था। वहीं कुछ अन्य विद्वानों का यह मानना है कि गांधीजी ने लड़ाकू ताकतों के बढ़ते प्रभाव से डरकर आन्दोलन को स्थगित किया था, क्योंकि चौरा-चोरी काण्ड के उपरान्त आन्दोलन की बागडोर लड़ाकू ताकतों के हाथों में जाने लगी थी। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य विद्वान गांधीजी द्वारा असहयोग आन्दोलन वापस लिए जाने के पीछे प्रमुख कारण जमींदारों के हितों की रक्षा को मानते हैं। इन विद्वानों का मत है कि गांधीजी जमींदारों के समर्थक थे। यही कारण था कि गांधीजी ने बारदोली प्रस्ताव में किसानों से लगान की अदायगी करने को कहा था।

किन्तु ये समस्त आलोचनाएं निरर्थक हैं। वस्तुत: गांधीजी ने पूंजीपति एवं मजदूरों के मध्य संघर्ष में सदैव मजदूरों का ही साथ दिया था। अहमदाबाद आन्दोलन को इस संदर्भ में देखा जा सकता है। वहीं चौरा-चोरा काण्ड में शामिल लड़ाकू भीड़ का प्रभाव इतना व्यापक नहीं था कि गांधीजी इस क्षेत्रीय भीड़ के हाथों में नेतृत्व जाने से डर जाते। उसी प्रकार यद्यपि यह सही है कि गांधीजी ने बारदोली प्रस्ताव में कृषकों को लगान अदायगी हेतु कहा था। इसका कारण यह था कि असहयोग आन्दोलन के कार्यक्रम में लगान न अदायगी का मुद्दा शामिल नहीं था। वस्तुत: गांधीजी इस आन्दोलन में जमींदारों एवं कृषकों दोनों का सहयोग प्राप्त करना चाहते थे। अत: उन्होंने कृषकों को उनकी सामर्थ्य के अनुसार लगान अदायगी हेतु कहा था।

वस्तुत: गांधीजी द्वारा असहयोग आन्दोलन को स्थगित किए जाने हेतु कुछ अन्य कारण उत्तरदायी थे। गांधीजी ने यह बार-बार कहा था कि बारदोली से प्रारंभ होने वाले सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान देश के अन्य हिस्सों में किसी भी तरह का आन्दोलन नहीं होना चाहिए, अहिंसक आन्दोलन भी नहीं। इसके पीछे गांधीजी का मन्तव्य यह था कि कर न अदायगी हेतु सविनय अवज्ञा आन्दोलन को सम्पूर्ण देश में प्रारंभ किए जाने पर हिंसात्मक गतिविधियों में वृद्धि हो सकती थी, जिससे ब्रिटिश सरकार को आन्दोलन के खिलाफ दमनात्मक कदम उठाने का नैतिक आधार मिल जाता। चौरा-चोरी काण्ड ने अंग्रेजों को दमनात्मक कार्यवाही करने हेतु नैतिक आधार प्रदान कर दिया था। अत: गांधीजी ने आन्दोलन को स्थगित कर जनता को ब्रिटिश दमन से बचाए रखा।

गांधीजी द्वारा आन्दोलन वापस लेने के पीछे एक अन्य कारण यह भी था कि 1921 ई. के उत्तरार्द्ध में आन्दोलन कमजोर पड़ने लगा था। छात्रों, वकीलों, व्यवसायिक वर्गों आदि की भागीदारी निरंतर घटती जा रही थी। अंग्रेजी सरकार किसी भी तरह का समझौता करने को तैयार नहीं थी। इससे पहले कि समर्पण की नौबत आती, चौरा-चोरी काण्ड ने आन्दोलन को वापस लेने का एक मौका दिया और गांधीजी ने वक्त की नजाकत को भांपते हुए आन्दोलन को स्थगित कर दिया।

वस्तुत: गांधीजी के आलोचक इस बात को भूल जाते हैं कि कोई भी आन्दोलन लगातार नहीं चलता, जनता की दमन सहने व बलिदान करने की शक्ति सीमित होती है। अत: कुछ दूर चलने के बाद आन्दोलन में पड़ाव जरूरी होता है, ताकि आन्दोलन के दूसरे चरण के लिए ऊर्जा जुटाई जा सके। संभवत: गांधीजी ने इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए आन्दोलन को स्थगित किया था।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

स्वराज पार्टी

स्थापना – मार्च, 1923 ई.। **स्थान** – इलाहाबाद। **संस्थापक** – चितरंजनदास एवं मोतीलाल नेहरू।

❐ कारण

असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के बाद कांग्रेस के सामने यह प्रश्न था कि 1919 ई. के एक्ट के द्वारा घोषित विधान परिषद्ों के चुनाव में भाग लिया जाए या नहीं। 1922 ई. के कांग्रेस अधिवेशन (गया) में चुनाव में भाग न लेने का निर्णय लिया गया, किन्तु चितरंजनदास एवं मोतीलाल नेहरू ने चुनाव में भाग लेने का निर्णय लिया तथा कांग्रेस से इस्तीफा दे दिया। मार्च, 1923 ई. में इलाहाबाद में इन दोनों नेताओं ने स्वराज पार्टी की स्थापना की। आगे सितम्बर, 1923 ई. में अबुल कलाम आजाद की अध्यक्षता में दिल्ली में कांग्रेस का विशेष अधिवेश बुलाया गया, जिसमें कांग्रेस ने विधान परिषद्ों में प्रवेश के कार्यक्रमों को स्वीकार कर लिया।

नवम्बर, 1923 ई. के चुनाव में स्वराज पार्टी को काफी सफलता मिली। सेन्ट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली की 101 निर्वाचित सीटों में से 42 सीटों पर इनकी जीत हुई। इस दौरान स्वराज पार्टी ने विधान परिषद्ों में महत्वपूर्ण कार्य किया, किन्तु 1925 ई. में चितरंजनदास की मृत्यु, मुस्लिम लीग के साम्प्रदायिक प्रचार आदि कारणों से 1926 ई. के चुनाव में स्वराज पार्टी को आशा के अनुरूप सफलता नहीं मिली। आगे 1930 ई. में सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारंभ हो जाने के कारण स्वराज पार्टी का महत्व समाप्त हो गया तथा इस पार्टी का अंत हो गया।

❐ सफलताएं

विधान परिषदों में स्वराज पार्टी ने कई महत्वपूर्ण किए, जिन्हें निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है –

1) ये बजट को प्रत्येक वर्ष अस्वीकृत कर देते थे। इससे वायसराय को अपने विशेषाधिकार से बजट पारित करना पड़ता था। इस प्रकार इन्होंने ब्रिटिश सरकार वास्तविक चरित्र उजागर किया।
2) स्वराज पार्टी ने ही सर्वप्रथम उत्तरदायी शासन की स्थापन हेतु गोलमेज सम्मेलन बुलाने का सुझाव दिया था।
3) 1924 ई. में इनकी मांग के कारण 1919 ई. के अधिनियम की समीक्षा हेतु मुण्डीमैन कमेटी नियुक्त की गई।
4) 1925 ई. में ये विट्ठलभाई पटेल को सेन्ट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली का अध्यक्ष बनवाने सफल रहे।
5) 1925 ई. में सेना के भारतीयकरण के लिए गठित स्क्रीन कमेटी का एक सदस्य मोतीलाल नेहरू को भी बनाया गया।
6) 1928 ई. में इन्होंने पब्लिक सेफ्टी बिल तथा ट्रेड डिसप्यूट्स बिल को पारित नहीं होने दिया।

इस प्रकार असहयोग आन्दोलन के उपरान्त जब राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में कांग्रेस का महत्व कम हो गया था, तब स्वराज पार्टी ने व्यापक ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध संघर्ष जारी रखा। वस्तुतः इन्हीं की मांगों का यह परिणाम था कि भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना हेतु लंदन में 3 गोलमेज सम्मेलनों का आयोजन किया गया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन

❐ कारण

1) **साइमन कमीशन का विरोध** – माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड अधिनिमय (1919 ई.) की समीक्षा हेतु भारत भेजे गए साइमन कमीशन की रिपोर्ट (1930 ई.) में केन्द्र में भारतीयों को किसी भी प्रकार का उत्तरदायित्व प्रदान न किए जाने की बात की गई थी। इसके विरोध में कांग्रेस नेताओं में आक्रोश था।
2) **नेहरू रिपोर्ट की अस्वीकृति** – कांग्रेस द्वारा साइमन कमीशन का बहिष्कार करने पर भारत सचिव लॉर्ड बर्केनहेड ने भारतीयों को एक ऐसा संविधान बनाने की चुनौती दी थी, जिसे सभी दलों का समर्थन प्राप्त हो। इस चुनौती को स्वीकार करते हुए भारतीय नेताओं द्वारा 1928 ई. में नेहरू रिपोर्ट को प्रस्तुत किया गया था, किन्तु इसके कुछ प्रस्तावों पर जिन्ना को आपत्ति थी। इस कारण नेहरू रिपोर्ट को अस्वीकार कर दिया गया। इससे भी भारतीय नेताओं में अंग्रेजों के प्रति आक्रोश था।
3) **लाहौर अधिवेशन** – दिसम्बर, 1929 ई. में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव पारित किया गया था। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कांग्रेस शीघ्र ही अखिल भारतीय आन्दोलन प्रारंभ करना चाहती थी।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

4) **गांधीजी की 11 सूत्री मांगें** – गांधीजी ने तत्कालिन वायसराय लॉर्ड इरविन के सामने 11 सूत्री मांगें रखी थीं, जिसमें नमक कर को समाप्त करने की मांग भी की गई थी। किन्तु इरविन के द्वारा इन मांगों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया, परिणामस्वरूप गांधीजी के नेतृत्व में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारंभ हो गया।

❐ उद्देश्य

सविनय अवज्ञा आन्दोलन का उद्देश्य ब्रिटिश शासन को समाप्त कर पूर्ण स्वराज की प्राप्ति करना था।

❐ कार्यक्रम

1) सभी स्थानों पर नमक कानून को तोड़ा जाएगा।
2) विदेशी कपड़ों, स्कूलों, न्यायालयों आदि का बहिष्कार किया जाएगा।
3) ब्रिटिश सरकार को किसी भी प्रकार का कर नहीं दिया जाएगा।
4) महिलाएं शराब की दुकानों के बाहर धरना देंगी।
5) कांग्रेस के झंडे का प्रयोग राष्ट्रीय ध्वज के रूप में किया जाएगा।

❐ प्रारंभ एवं प्रसार

सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रारंभ 12 मार्च, 1930 ई. को गांधीजी द्वारा प्रारंभ की गई दांडी यात्रा से हुआ। गांधीजी दांडी से साबरमती 6 अप्रैल, 1930 ई. को पहुंचे तथा यहां मुठ्ठीभर नमक उठाकर नमक कानून का उल्लंघन किया। देश के अन्य क्षेत्रों में भी नमक कानून का उल्लंघन किया गया। उदाहरणार्थ – राजगोपालाचारी ने तमिलनाडु में त्रिचनापल्ली से वेदारण्यम् पहुंचकर वहां नमक कानून भंग किया। के. कल्लपन व टी. के. माधवन ने केरल में कालीकट से पायन्नूर पहुंचकर वहां नमक कानून भंग किया। सरोजनी नायडू ने बम्बई के धरसना में नमक कानून का उल्लंघन किया।

इस आन्दोलन के दौरान पेशावर में खान अब्दुल गफ्फार खां के नेतृत्व में खुदाई खिदमदगार आन्दोलन हुआ। महाराष्ट्र के शोलापुर में मिल मजदूरों ने आन्दोलन किया। स्थायी बंदोबस्त के क्षेत्र (बंगाल व बिहार) में चौकीदारी कर रोको आन्दोलन तथा रैय्यतवाड़ी क्षेत्र (बारदोली) में लगान न अदायगी करने का आन्दोलन चलाया गया। मध्य प्रांत, कर्नाटक एवं महाराष्ट्र में वन सत्याग्रह प्रारंभ हो गया। उसी प्रकार असम में कनिंघम सर्कुलर (इस सर्कुलर के अनुसार छात्रों एवं अभिभावकों को आन्दोलन में शामिल न होने हेतु कहा गया था) के विरोध में छात्रों ने शक्तिशाली आन्दोलन चलाया था।

❐ असफलता के कारण

आन्दोलन के बढ़ते प्रभाव को ब्रिटिश सरकार द्वारा नवम्बर, 1930 ई. से जनवरी, 1931 ई. के बीच लंदन में गोलमेल सम्मेलन का आयोजन किया गया। कांग्रेस ने इस सम्मेलन का बहिष्कार किया था। फलतः यह सम्मेलन महत्वहीन हो गया। अतः गांधीजी को जेल से रिहा कर वायसराय से बातचीत का अवसर दिया गया। 5 मार्च, 1931 ई. गांधी-इरविन समझौता हुआ, जिसमें सविनय अवज्ञा को स्थगित कर कांग्रेस ने द्वितीय गोलमेल सम्मेलन में भाग लेने की बात कही। सितम्बर, 1931 ई. से दिसम्बर, 1931 ई. तक चले गोलमेल सम्मेलन में गांधीजी ने भी भाग लिया, किन्तु वहां भी निराशा ही हाथ लगी, क्योंकि सरकार ने साम्प्रदायिक तत्वों को प्रोत्साहन दिया। फलतः गांधीजी ने भारत आगमन के उपरान्त 1 जनवरी, 1932 ई. को पुनः सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ दिया। किन्तु ब्रिटिश सरकार ने कठोर दमनचक्र चलाया। गांधीजी पुनः जेल में कैद कर दिए गए तथा कांग्रेस को अवैध घोषित कर दिया गया। इस प्रकार अन्ततः कांग्रेस ने 1934 ई. में सविनय अवज्ञा आन्दोलन को समाप्त कर दिया।

❐ मूल्यांकन/महत्व

यद्यपि सविनय अवज्ञा आन्दोलन अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुआ तथा तत्काल मे भारत को पूर्ण स्वराज की प्राप्ति नहीं हुई। किन्तु इस आन्दोलन का दीर्घकालीक महत्व था। इस आन्दोलन में लोगों ने बढ़-चढ़कर जेल यात्रा में हिस्सा लिया। आन्दोलन में महिलाओं की भी सक्रिय भागीदरी रही। कांग्रेस का जनाधार काफी विस्तृत हो गया। यही कारण था कि 1937 ई. के चुनाव में कांग्रेस को भारी सफलता मिली। इस प्रकार इस आन्दोलन से राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम को व्यापक जनसमर्थन प्राप्त हुआ तथा भविष्य के भारत छोड़ो आन्दोलन का मजबूत आधार निर्मित हो गया।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

भारत छोड़ो आन्दोलन

❐ कारण

1) 1 सितम्बर, 1939 ई. को प्रारंभ हुए द्वितीय विश्वयुद्ध में बिना भारतीय नेताओं की सहमति भारत को युद्धरत् राष्ट्र घोषित कर दिया गया था। इसके विरोध में 30 अक्टूबर, 1939 ई. में 8 प्रांतों में कांग्रेस मंत्रिमण्डल ने इस्तीफा दे दिया। इस घटना के उपरान्त कांग्रेस के सदस्य ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध एक व्यापक जनान्दोलन प्रारंभ करन चाहते थे।

2) मार्च, 1942 ई. में भारत आए क्रिप्स मिशन द्वितीय विश्वयुद्ध हेतु भारतीयों का समर्थन प्राप्त करने में असफल रहा। क्रिप्स मिशन की असफलता ने भी भारत छोड़ो आन्दोलन की संभावना निर्मित कर दी थी।

3) द्वितीय विश्वयुद्ध से उपजी आर्थिक समस्याओं ने ही जनान्दोलन को प्रेरित किया था।

❐ उद्देश्य

भारत छोड़ो आन्दोलन का उद्देश्य ब्रिटिश शासन को समाप्त कर पूर्ण स्वराज की प्राप्ति करना था।

❐ कार्यक्रम

1) सरकारी कर्मचारी नौकरी न छोड़े, किन्तु कांग्रेस के प्रति निष्ठा की घोषणा कर दें।

2) देशी राजा जनता की प्रभुसत्ता स्वीकार कर लें और रियासतों की जनता स्वयं को भारतीय राज्य का अंग घोषित कर दें।

3) छात्र पढ़ाई तभी छोड़े, जब आजादी प्राप्त होने तक वे इस निर्णय पर अड़िग रह सके।

4) यदि जमींदार कास्तकारों का साथ न दे, तो वे लगान न दें।

❐ प्रारंभ एवं प्रसार

14 जुलाई, 1942 ई. में कांग्रेस कार्यसमिति की वर्धा बैठक में भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव पारित किया गया। 7 अगस्त, 1942 ई. को अबुल कलाम आजाद की अध्यक्षता में कांग्रेस के मुम्बई अधिवेशन में भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव पुनः पारित किया गया। इस प्रकार 8 अगस्त, 1942 ई. को भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारंभ हो गया।

ब्रिटिश सरकार ने तीव्र कार्यवाही करते हुए 9 अगस्त की सुबह 'ऑपरेशन जीरो आवर' के तहत् कांग्रेस के सभी महत्वपूर्ण नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। साथ ही कांग्रेस को एक अवैधानिक संस्था घोषित कर दिया गया तथा हड़तालों, धरनों व जुलूसों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। परिणामस्वरूप इस आन्दोलन ने भूमिगत् आन्दोलन का रूप धारण कर लिया।

भूमिगत् आन्दोलन की बागडोर अच्युत पटवर्धन, अरूणा आसफ अली, सुचेता कृपलानी, राममनोहर लोहिया, बीजू पटनायक, जयप्रकाश नारायण आदि ने संभाला। इस दौरान आन्दोलन के प्रचार-प्रसार में गुप्तरूप से संचालित रेडियो व्यवस्थाएं भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। मुम्बई में रेडियो प्रसारण का कार्य उषा मेहता ने प्रारंभ किया था तथा राममनोहर लोहिया भी नियमित रूप से कांग्रेस रेडियो में बोलते थे। किन्तु शीघ्र ही पुलिस ने इसे खोज निकाला व जब्त कर लिया।

भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान देश के कुछ भागों में समान्तर सरकार की स्थापना हुई। उदाहरणार्थ – बलिया (उत्तर प्रदेश) में चित्तू पाण्डे के नेतृत्व में, तामलुक (बंगाल) में सतीश सावंत के नेतृत्व में जातीय सरकार तथा सतारा (महाराष्ट्र) में वाई. वी. चह्वाण के नेतृत्व में समानान्तर सरकार ने लम्बे समय तक कार्य किया।

❐ असफलता के कारण

भारत छोड़ो आन्दोलन तत्कालिन समय में अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो सका। वस्तुतः इसके पीछे प्रमुख कारण थे –

1) कांग्रेस के समस्त महत्वपूर्ण नेता गिरफ्तार कर लिए गए थे। अतः आन्दोलन को प्रभावी नेतृत्व प्राप्त नहीं हो सका।

2) ब्रिटिश सरकार ने आन्दोलन को एक गंभीर चुनौती के रूप में स्वीकार करते हुए विद्रोहियों के खिलाफ कठोर दमनचक्र चलाया।

3) भारत की कई राजनीतिक पार्टियों ने भारत छोड़ो आन्दोलन का समर्थन नहीं किया, जैसे – साम्यवादी दल, मुस्लिम लीग, अखिल भारतीय अनुसूचित जाति फेडरेशन, हिन्दू महासभा, अकाली दल आदि।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ मूल्यांकन/महत्व

यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने कठोर दमनचक्र चलाकर इस आन्दोलन को दबा दिया था, किन्तु ब्रिटिश सरकार यह समझ गई थी कि भारत पर लम्बे समय तक अधिकार नहीं रखा जा सकता है। इस प्रकार भारत छोड़ो आन्दोलन राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का अंतिम चरण था। इस आन्दोलन के पश्चात् भारत की आजादी लगभग सुनिश्चित थी, प्रश्न केवल यह रह गया था कि सत्ता का हस्तान्तरण किस तरीके से हो तथा स्वतंत्रता के उपरान्त सरकार का स्वरूप क्या हो।

❐ क्या भारत छोड़ो आन्दोलन स्वत:स्फूर्त था?

भारत छोड़ो आन्दोलन के प्रारंभ होने के साथ ही इससे जुड़े सभी महत्वपूर्ण नेता गिरफ्तार कर लिए गए थे। इसके पश्चात् आन्दोलन की बागडोर जनता ने स्वयं संभाली थी। यहां तक कि गांधीजी को भी इस बात का अंदेशा था कि कांग्रेस के नेता गिरफ्तार किए जा सकते हैं। अत: उन्होंने भी इस आन्दोलन के प्रारंभ में ही यह स्पष्ट कर दिया था कि इस आन्दोलन में हर भारतीय को जो आजादी चाहता है, अपना मार्गदर्शक स्वयं बनना होगा। फिर हम यह भी जानते हैं कि इस आन्दोलन का व्यापक प्रभाव उन क्षेत्रों, जैसे – उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार आदि में अधिक था, जहां कांग्रेस ने पहले से ही आन्दोलन हेतु जनाधार निर्मित किया था। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि भारत छोड़ो आन्दोलन सुनियोजित एवं स्वत:स्फूर्त आन्दोलन था।

किन्तु तस्वीर का दूसरा पहलू भी है। यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि जनता की प्रतिक्रियाएं स्वत:स्फूर्त थीं, किन्तु यह तभी संभव हुआ, जब कांग्रेस के महत्वपूर्ण नेता गिरफ्तार कर लिए गए थे। अत: भारत छोड़ो आन्दोलन के स्वरूप पर सावधानीपूर्वक विचार किए जाने की आवश्यकता है।

आजाद हिन्द फौज

फरवरी, 1942 ई. में जापान द्वारा सिंगापुर पर अधिकार कर लेने से यहां 40,000 भारतीय सैनिक युद्धबंदी बनाए गए। इन युद्धबंदियों को लेकर मोहन सिंह (जापानी सेना के सैनिक) ने भारतीय राष्ट्रीय सेना (इंडियन नेशनल आर्मी) नाम से आजाद हिंद फौज का निर्माण किया। इस प्रकार प्रारंभिक रूप से सितम्बर, 1942 ई. में सिंगापुर में आजाद हिन्द फौज का गठन हुआ। इसका उद्देश्य भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना था।

2 जुलाई, 1943 ई. को सुभाषचंद्र बोस सिंगापुर पहुंचे। 21 अक्टूबर, 1943 ई. को सुभाचंद्र बोस ने आजाद हिन्द फौज के सर्वोच्च सेनापति की हैसियत से सिंगापुर में स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार की स्थापना की। इस प्रकार विधिवत रूप से 21 अक्टूबर, 1943 ई. में आजाद हिन्द फौज सिंगापुर में अस्तित्व में आई। यहीं से दिल्ली चलो, तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा तथा जय हिन्द का नारा दिया गया।

सुभाषचंद्र बोस की स्वतंत्र अस्थायी सरकार को 9 देशों ने मान्यता दी, जिसमें जापान, जर्मनी, बर्मा, इटली, चीन आदि सम्मिलित थे। इस सरकार ने 23 अक्टूबर, 1943 ई. को मित्र राष्ट्रों (ब्रिटेन) के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। जापान सरकार ने अंडमान और निकोबार द्वीप पर विजय प्राप्त कर इसका शासन नेताजी की सरकार को सौंप दिया। दिसम्बर, 1943 ई. को सुभाषचंद्र बोस वहां गए तथा वहां उन्होंने तिरंगा झण्डा फहराया।

4 फरवरी, 1944 ई. को आजाद हिन्द फौज रंगून से अराकान की पहाड़ियों की तरफ बढ़ी। यहां अराकान के मोर्चे पर ब्रिटिश सेनाओं की टुकड़ी को बुरी तरह पराजित किया। यहां विजय प्राप्त करने के पश्चात् आजाद हिन्द फौज भारतीय सीमा में प्रवेश कर गई। जापानियों की सहायता से उन्होंने कोहिमा पर अधिकार कर लिया और पहाड़ की चोटी पर आजाद हिन्द फौज ने भारत का तिरंगा झण्डा फहरा दिया।

आजाद हिन्द फौज का उत्साह दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था, परन्तु इसी बीच युद्ध में परिस्थितियां बदल गई और पूर्वी एशिया में जापान की कई स्थानों पर हार हुई। जापान की पराजय के साथ आजाद हिन्द फौज की योजना भी असफल हो गई। अगस्त, 1945 ई. में सुभाषचंद्र बोस बैंकाक से टोकियो रवाना हुए, परन्तु फारमोसा द्वीप के पास विमान में आग लग जाने कारण 18 अगस्त, 1945 ई. को उनकी मृत्यु हो गई।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **आजाद हिन्द फौज पर मुकदमा (नवम्बर, 1945 ई.)**

आजाद हिन्द फौज के गिरफ्तार सैनिकों एवं अधिकारियों पर अंग्रेज सरकार ने दिल्ली के लाल किले में नवम्बर, 1945 ई. को मुकदमा चलाया। इस मुकदमे के मुख्य अभियुक्त तीन अधिकारी – मेजर शहनवाज खां, कर्नल प्रेम सेहगल और कर्नल गुरू दयालसिंह ढिल्लो पर राजद्रोह का आरोप लगाया गया। इनके समर्थन में पूरे देश में सहानुभूति की लहर चल पड़ी और ये तीनों देश के विभिन्न सम्प्रदायों की सांकेतिक एकता के प्रतीक बन गए। न केवल कांग्रेस बल्कि सभी राजनीतिक दलों जैसे मुस्लिम लीग, अकाली दल, कम्युनिस्ट पार्टी इत्यादि ने भी मुकदमे की सुनवाई का विरोध किया।

आजाद हिन्द फौज के बचाव के लिए कांग्रेस ने भूलाभाई देसाई के नेतृत्व में आजाद हिन्द फौज बचाव समिति का गठन किया, जिसमें तेजबहादुर सप्रू, कैलाशनाथ काटजू, अरुणा आसफ अली, जवाहरलाल नेहरू तथा जिन्ना प्रमुख वकील थे। फौजी अदालत द्वारा इन तीनों को फांसी की सजा सुनाई गई। इस निर्णय के खिलाफ पूरे देश में "लाल किले को तोड़ दो, आजाद हिन्द फौज को छोड़ दो" के नारे लगने लगे। विवश होकर तत्कालीन वायसराय लॉर्ड वेवेल ने अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर इनकी मृत्युदण्ड की सजा को माफ कर दिया।

भारत विभाजन

❒ क्या भारत विभाजन को रोका जा सकता था?

कुछ इतिहासकारों ने भारत विभाजन हेतु कांग्रेस को उत्तरदायी मानते हुए कहा है कि यदि कांग्रेसी नेता पर्याप्त सूझबूझ और साहास दिखाते, तो भारत विभाजन को रोका जा सकता था। मार्क्सवादी लेखकों के अनुसार 1946 ई. के पश्चात् वामपंथी उभार को देखते हुए कांग्रेस भयभीत हो गई थी कि कहीं बहुसंख्यक जनता का समर्थन वामपंथी नेताओं के पक्ष में न चला जाए। जबकि सबाल्टर्न इतिहासकारों के अनुसार कांग्रेस निम्न वर्ग के हाथों में सत्ता के हस्तानान्तरण से भयभीत हो गई थी। अत: कांग्रेस ने अविलम्ब सत्ता पर अधिकार करने हेतु विभाजन को स्वीकार कर लिया था। उसी प्रकार हिन्दूवादी नेता कांग्रेस पर मुस्लिम लीग के प्रति तुष्टीकरण की नीति का आरोप लगाते हैं। उनका मत है कि कांग्रेस ने मुस्लिम लीग के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनाई तथा विभाजन को स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार ऊपर उल्लेखित बातों से ऐसा प्रतीत होता है कि 1937 ई. से पूर्व संगठित प्रयासों के माध्यम से विभाजन की संभावना को टाला जा सकता था। यदि कांग्रेस मुस्लिम लीग के दुष्प्रचार का मजबूती के साथ विरोध करती तथा मुसलमानों के बीच व्यापक जनाधार निर्मित करने का प्रयास करती, तो संभवत: मुस्लिम जनता मुस्लिम लीग की सम्प्रदायिक राजनीति का शिकार नहीं होती तथा विभाजन को रोका जा सकता।

किन्तु 1937 ई. के पश्चात् परिस्थितियों में परिवर्तन आ चुका था। मुस्लिम लीग की सम्प्रदायिक राजनीति ने मुस्लिम जनता के बीच अपनी जड़े जमा ली थी। 1940 ई. के लाहौर अधिवेशन के पश्चात् मुस्मिल लीग पाकिस्तान से कम पर समझौता करने के लिए तैयार नहीं थी। राजगोपालाचारी फार्मूला तथा गांधी-जिन्ना वार्ता की असफता से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है। साथ ही देश में सम्प्रदायिक दंगे फैल चुके थे तथा ब्रिटिश सरकार ने इन दंगों को दबाने में अधिक तत्परता नहीं दिखाई। ऐसी स्थिति में विभाजन का विकल्प था – व्यापक रक्तपात एवं हिंसा। अत: ऐसा प्रतीत होता है कि 1937 ई. के पश्चात् विभाजन अनिवार्य हो गया था।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS